आत्म-निवेदन

...डेय-पुराण में महाभारत के सम्बन्ध में उठने वाली पांच

...किया गया है। और महाभारत हमारा पंचम-

...का स्पष्टीकरण है।

श्री मार्कण्डेय पुराण

—:०:—

(समस्त कथाएँ, उपकथाएँ, नीति, उपदेश आदि)

रूपान्तरकार

अनेकानेक ग्रंथों के प्रणेता

पं० भगवानदास अवस्थी, एम० ए०

प्रकाशक

ज्ञानलोक

दारागंज, प्रयाग

प्रथमबार] १९४२ [मूल्य २॥)

आत्म-निवेदन

श्री मार्कण्डेय-पुराण में महाभारत के सम्बन्ध में उठने वाली पांच शंकाओं का समाधान दिया गया है। और महाभारत हमारा पंचम वेद है, उसमें हमारे धर्म की सभी बातों का स्पष्टी करण है।

एक बात और है। दुर्गासप्तशती एक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ है जिस का पाठ प्रतिदिन लाखों ही नहीं करोड़ों हिन्दू करते हैं। उसमें आदि शक्ति महामाया के वीरत्वपूर्ण भोग-मोक्ष-दायक माहात्म्य का विशद वर्णन है। और उसी सप्तशती की कथा मार्कण्डेय पुराण से ली गई है। इसी से मार्कण्डेय पुराण का महत्व स्पष्ट है।

आज इस बीसवीं शताब्दी में भी, धर्म-प्राण हिन्दू जनता को बहुत कुछ आवश्यक और उचित शिक्षा अपने प्राचीन ग्रन्थों से मिल सकती है। हिन्दू समाज जीवनी शक्ति-सचार करने वाले ज्ञान और धर्म को इनके द्वारा समझ सकता है। इनके अध्ययन से पता चलेगा कि हिन्दू क्या-कैसे थे और क्यों, वे क्या-कैसे होते गये और किन कारणों से, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक बातों में किस प्रकार और क्यों परिवर्तन होते गये और उनका क्या प्रभाव पड़ा। सशक्त, सफल, सुख-समृद्धि शाली हिन्दुओं के क्या-कैसे आदर्श, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, धार्मिक-सामाजिक सिद्धान्त और आचरण रहे हैं? इसी कारण मैं हिन्दू धर्म के इन प्रमुख ग्रन्थों को इस रूप में हिन्दी-संसार के समक्ष रखने का साहस कर रहा हूँ।

यदि धर्म-प्राण हिन्दू-जनता अपने पूर्व-काल की सफलता-समृद्धि के मूल कारण और इधर हजारों वर्षों से चली आने वाली अनेक प्रकार की पराजय और अवनति के प्रमुख कारणों को इन ग्रन्थों के पारायण से भली प्रकार जान सकी और धर्म के यथार्थ तत्वों को समझ कर, धर्म के नाम पर प्रचलित होने वाली विनाशकारी रूढ़ियों से अपना पीछा छुड़ा कर, प्राचीन आदर्शों को सामने रख धार्मिक, सामाजिक, राज-नीतिक अभ्युन्नति की ओर अग्रसर हो सकी, तो मैं अपने इस प्रयास को सफल समझूँगा।

भगवान दास अवस्थी

मार्कण्डेय पुराण

की

विषयानुक्रमणिका

जैमिनि ऋषि का मार्कण्डे जी से महाभारत के सम्बन्ध में पाँच प्रश्न करना; मार्कण्डेयजी का वपु नाम अप्सरा को दुर्वासा जी द्वारा शाप दिये जाने का वर्णन करना; कनक और कन्धर नामक पक्षियों का राक्षस के साथ युद्ध और पक्षियों की उत्पत्ति, पक्षियों द्वारा शमीकमुनि को अपने शाप का कारण बताया जाना; पक्षियों का विन्ध्यांचल पर्वत पर पहुँचना; जैमिन ऋषि का विन्ध्याचल पर चारों पक्षियों के पास पहुँच कर अपने पांचौ प्रश्न करना, उनका उत्तर देते हुए पक्षियों द्वारा चतुर्व्यूह अवतार का वर्णन; इन्द्रविक्रिया का वर्णन तथा द्रौपदी का पाँच स्वामियों की पत्नी होने का कारण; बलदेवजी द्वारा ब्रह्महत्या तथा उसका कारण; विश्वामित्र के कोप के कारण राजा हरिश्चन्द्र का राज्य-च्युत होना तथा द्रौपदी के पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन; पक्षियों द्वारा राजा हरिश्चन्द्र की कथा का वर्णन; विश्वामित्र और वशिष्ठ का क्रमशः बगुला और सारस बनकर आपस में घोर युद्ध करना; पिता-पुत्र सम्वाद में मरण के पश्चात् जीव की गति दशा का, गर्भस्थ जीव के दुःखों का, रौरवादि नरकों का वर्णन; राजा विपश्चित और यमदूत का सम्वाद; किस-किस पाप से कौन-कौन नरक मिलते हैं; विपश्चित का सब नरक वालों के साथ स्वर्ग गमन; पतिव्रता ब्राह्मणी की कथा और अनुसूया के पातिव्रत महत्त्व का वर्णन; ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, शिव के अंश से दुर्वासा और विष्णु के अंश से

दत्तात्रेयजी की उत्पत्ति; दत्तात्रेय जी की आराधना करने से देवताओं को दैत्यों पर विजय; राजा कार्तवीर्य की कथा; राजा शत्रुजित के पुत्र ऋतध्वज का कुवलयाश्व नामक उपाधि धारण करना; कुवलयाश्व का पातालकेतु नाम राक्षस को मारकर पाताल में मदालसा से विवाह करना; कपट मुनि के कारण मदालसा का वियोग, नागराज अश्वतर के प्रयत्न से पुनः मदालसा की उत्पत्ति; कुवलयाश्व का पुनः मदालसा को प्राप्त करना; मदालसा को पुत्र प्राप्ति तथा उसको बहलाने के मिस से मदालसा का पुत्र को निर्ममात्मक उपदेश; मदालसा के तीनों पुत्रों का विरक्त हो जाना, चौथे पुत्र को मदालसा का अनुशासन; मदालसा का अपने चौथे पुत्र अलर्क से राजाओं के कर्मों का, वर्णाश्रम का, गृहस्थ धर्म का। पंचयज्ञ, जातकर्म, नैमित्तिक क्रिया और श्राद्ध आदि का वर्णन; पार्वण श्राद्ध की विधि, श्राद्धों में वर्ज्यावर्ज्य; तिथी और नक्षत्र के अनुसार श्राद्ध का फल; सदाचार आदि व्यवस्था; शुद्धाशुद्ध और वर्ज्यावर्ज्य का निर्णय; मदालसा का अपने पुत्र अलर्क को अन्तिम उपदेश देकर अपने पति राजा ऋतध्वज के साथ तप करने के हेतु वन को जाना, राज्य छिन जाने पर अलर्क को आत्मविवेक होना; दत्तात्रेय जी से राजा अलर्क को आत्मज्ञान; योगाभ्यास का, योग की सिद्धियों का, योगि चर्या, योगिधर्म में ओंकार स्वरूप का, मृत्यु आदि अरिष्टों के लक्षण का वर्णन; जड़ोपाख्यान की समाप्ति, सुबाहु और काशिराज का संवाद और ज्ञान पाकर अलर्क का विरक्त हो जाना; मार्कण्डेय जी का क्रौष्टुकि के प्रति ब्रह्मा की उत्पत्ति वर्णन करना; मन्वंतरों और देवताओं के वर्ष की संख्या तथा ब्रह्मा जी की आयु का प्रमाण; प्राकृति- वैकृत सर्ग अर्थात् जगत की उत्पत्ति-सृष्टि का वर्णन; सृष्टि के आदि में मनुष्यों की दशा और स्वभाव; स्वायम्भुवमनु और शतरूपा से अनेक सन्तानों की उत्पत्ति, दुःस नामी यक्षों के दुःसहरूप दुःख सन्तान, उसके नाम और गुण; रुद्र-सर्ग का वर्णन, मवन्तर की संख्या और सातों द्वीप

का वृत्तान्त; पृथ्वी और द्वीपों का प्रमाण, समुद्र, पर्वत और जम्बूद्वीप, मन्दारादि पर्वतों का वर्णन; गंगावतार की कथा; भारतवर्ष का विभाग तथा उसके पर्वत और नदियों का वर्णन; भगवान कूर्म पर भारतवर्ष स्थिति; भद्राश्व, केतुमाल, किम्पुरुष, हरि, इलावर्त, रम्यक्, और हिरण्य नामक वर्षों का वर्णन; एक ब्राह्मण का हिमाचल पर्वत पर पहुँचना, वरूथिनी नाम अप्सरा का उसपर आसक्त होना और ब्राह्मण का उसकी प्रार्थना को ठुकरा देना, कलि नाम गन्धर्व का ब्राह्मण रूप होकर वरूथिनी से स्वरोचि नाम के एक पुत्र की उत्पत्ति; स्वरोचि का मनोरमा, विभावरी और कलावती आदि से विवाह; हंसिनी और चक्रवाकी तथा हरिण और हरिणियों का परस्पर वार्तालाप; स्वरोचि के पुत्र स्वारोचिष के जन्म की कथा; स्वारोचिष मन्वन्तर के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम; पद्मिनी नाम विद्या की आठों निधियों का वर्णन; राजा उत्तम का अपनी पत्नी को त्यागना, एक ब्राह्मण की स्त्री का खो जाना तथा उसको ढूँढने के लिए ब्राह्मण का राजा से प्रार्थना करना, उसकी स्त्री का मिल जाना; राजा उत्तम का अपनी स्त्री को भी ढूँढने का प्रयत्न करना, एक मुनि से वार्तालाप, राजमहिषी की पुनः प्राप्ति और औत्तम के जन्म की कथा; औत्तम मनवन्तर के देवता, इन्द्र, ऋषि और राजाओं के नाम; इस मन्वन्तर के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम, देवी माहात्म्य का आरम्भ, मधुकैटभ वध; महिषासुर की सेना का वध, महिषासुर वध; इन्द्रादिक देवताओं का देवी की स्तुति करना; शुम्भ निशुम्भ का देवी को बुलाने के लिए दूत भेजना, देवी और दूत का संवाद; देवी के न जाने पर शुम्भ-निशुम्भ का अपने सेनापति धूम्रलोचन को देवी से युद्ध करने को भेजना, धूम्रलोचन का वध; चण्ड-मुण्ड वध, रक्तबीज वध; निशुम्भवध; शुम्भवध, सब देवताओं द्वारा देवी की स्तुति; देवी के चरित्र का माहात्म्य तथा देवताओं को वरदान; राजा सुरथ और एक वैश्य का देवी की तपस्या करना और उन दोनों को देवी का वरदान;

दक्ष सावर्ण नामक नवें मन्वन्तर से रौच्य नाम तेरहवें मन्वन्तरों के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम; रुचि नाम ब्राह्मण को विरक्त देखकर पितरों का उसको गृहस्थ-धर्म का उपदेश देना; रुचि का प्रम्लोचा नाम अप्सरा की पुत्री मालिनी से विवाह करना और उससे रौच्यनामक मनु का उत्पन्न होना; शान्ति मुनि द्वारा अग्नि की स्तुति, भूति मुनि से भौत्य नाम चौदहवें मनु की उत्पत्ति और उस मन्वन्तर के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम; सूर्य भगवान की उत्पत्ति तथा उनके स्वरूप का वर्णन; ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद मय सूर्य; ब्रह्माजी द्वारा सूर्य भगवानकी स्तुति; अन्य सृष्टि के साथ देवताओं और राक्षसों की उत्पत्ति, देवताओं और राक्षसों में तुमुल युद्ध, युद्ध में देवताओं की पराजय, सूर्य भगवान का अदिति को वरदान देकर उसके गर्भ से उत्पन्न होना और राक्षसों को पराजित करना; विश्वकर्मा द्वारा सूर्य का तेज कम किया जाना; सूर्य भगवान से अश्विनी कुमारों की और रैवत मनु की उत्पत्ति; सूर्य का माहात्म्य; राजा राज्यवर्धन की आयु-वृद्धि के लिए प्रजाओं द्वारा सूर्य की उपासना, राज्य वर्द्धन एवं उनकी प्रजाओं की आयु का बढ़ जाना, सूर्य का माहात्म्य; सूर्यवंश का अनुक्रम; राजा पृषध्र, राजा नाभाग, राजा सुदेव; भनन्दन-वत्सप्री चरित्र; महाराज खनित्र की कथा; महाराज करन्धम की कथा; अवीक्षित चरित्र; मरुत्त चरित्र; नरिष्यन्त चरित्र; महाराज दम का चरित्र; पुराण की समाप्ति और माहात्म्य ।

॥ समाप्त ॥

मार्कण्डेय पुराण

अध्याय १

जैमिनि जी का महाभारत की कथा पूछना, अप्सरा का पक्षी होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

तप और स्वाध्याय में लगे हुए महामुनि मार्कण्डेय जी से व्यास जी के शिष्य जैमिनि ऋषि ने कहा—'भगवान व्यास देव का रचा हुआ महाभारत ग्रंथ सब ग्रंथों में उसी तरह श्रेष्ठ है, जैसे देवगण में विष्णु, शस्त्रों में वज्र, इन्द्रियों में मन। उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी का वर्णन है और किसी बात में अन्य शास्त्रों से विरोध नहीं है। मैं उसी कथा के तत्वों को आप से जानने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

मार्कण्डेय जी बोले—'यह समय हमारी क्रियाओं के साधन का है। महाभारत की कथा के निमित्त अवकाश की आवश्यकता है। आप परम तत्वज्ञानी पिंगलाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख नामक पक्षियों के पास जाइये। वे चारों पक्षी द्रोण के पुत्र हैं। वे आप के सब संदेहों को दूर कर

देंगे। वे शास्त्रचिन्तक हैं,वेदों के ज्ञाता हैं। वे विन्ध्याचल की कन्दरा में रहते हैं। आप उन्हीं से प्रश्न करें।'

जैमिनि ने आश्चर्य से पूछा—'पक्षि-योनि में उन्हें ऐसा दुर्लभ ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? वे द्रोण कौन हैं, जिन के ऐसे तत्वज्ञानी पुत्र उत्पन्न हुए ?'

मार्कण्डेय जी बोले—'एक बार प्राचीन काल में देव-राज इन्द्र नन्दन वन में सुन्दरी अप्सराओं के साथ बैठे मनोरंजन कर रहे थे। संयोग से उसी समय नारद मुनि वहां विचरण करते हुए जा पहुँचे। इन्द्र ने उन का स्वागत किया, उन्हें आदर से अपने आसन पर बैठाला और पूछा कि यदि आज्ञा हो तो अप्सराओं का नृत्य-गान हो। नारद जी ने मुस्कराकर कहा कि बिना रूप-गुण के नृत्य अच्छा नहीं होता, इस कारण जो अप्सरा अपने को सबसे अधिक रूपवती समझती हो वही नृत्य करे। उनकी बात सुन कर अप्सराओं में कहा-सुनी होने लगी। प्रत्येक अप्सरा अपने को रूप-गुण में श्रेष्ठ बतलाने लगी। तब नारद जी ने हँस कर कहा कि ऐसे निर्णय न हो सकेगा, जो अपने रूप-गुण से दुर्वासा जी को मोहित करले वही सबसे श्रेष्ठ मानी जायगी। दुर्वासा जी का नाम सुन कर और सब अप्सराएँ तो काँप गईं, किन्तु वपु नामक अप्सरा अपने रूप-गुण की परीक्षा देने के लिए तैयार हो गई। उसने

कहा कि मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव को भी मोहित कर सकती हूँ। वह दुर्वासा जी के आश्रम में गई और अपने हावभाव तथा रूपगुण पर दुर्वासा जी को मुग्ध कर लिया। कुछ समय बाद दुर्वासा जी को अपने ठगे जाने का ज्ञान हुआ। तब उन्होने वपु को शाप दिया कि तू १६ वर्ष तक पक्षी की योनि में रह और फिर बाण के कारण शरीर त्याग कर अपने रूप को प्राप्त हो। शाप के कारण वपु को पक्षी की योनि में जन्म लेना पड़ा।'

—:o:—

अध्याय २-३

मार्कण्डेय जी बोले—'सब पक्षियों के राजा गरुड़ अरिष्टनेमि के पुत्र हुये। गरुड़ के पुत्र सम्पाति, सम्पाति के पुत्र सुपार्श्व, सुपार्श्व के पुत्र कुन्ति, कुन्ति के पुत्र प्रलोलुप हुए। प्रलोलुप के कंक और कंधर नामक दो पुत्र हुए। कंक का वास कैलाशशिखर पर था। एक बार कुबेर का सेवक एक राक्षस अपनी स्त्री के साथ पर्वत पर आकर विहार करने लगा। संयोग से कंक की दृष्टि उस पर पड़ गई। राक्षस ने कंक को बहुत भला-बुरा कहा। बात ही बात में दोनों में घोर युद्ध हुआ और अन्त में राक्षस ने कंक को मार डाला। अपने भाई की मृत्यु से उसके भाई कंधर को बड़ा दुःख हुआ। बदला लेने के लिए कंधर ने राक्षस से

युद्ध किया और अन्त में उसे मार डाला। राक्षस की स्त्री ने अपने पति को मरा हुआ देख, कंधर से कहा कि तुम मुझे न मारो, मैं तुम्हारी पत्नी बन कर रहूंगी। कंधर राजी हो गया। वह स्त्री मेनका अप्सरा की पुत्री थी। वह इच्छानुसार अपना रूप बदल सकती थी। कंधर की प्रसन्नता के लिए उसने पक्षी का रूप बना लिया। उसने कंधर के अंश से तार्क्षी नामक कन्या को जन्म दिया। दुर्वासा जी के शाप के कारण वपु नामक अप्सरा ने ही तार्क्षी के रूप में जन्म लिया था।

'मन्दपाल नामक पक्षी के द्रोण नामक वेदज्ञ, तत्वज्ञ पुत्र से कंधर ने तार्क्षी नामक अपनी कन्या का विवाह कर दिया। यथा समय द्रोण के अंश से तार्क्षी के गर्भ रहा। उसी दशा में संयोग से वह कुरुक्षेत्र की ओर गई। उस समय वहाँ कौरवों-पाण्डवों में घोर युद्ध चल रहा था। कुतूहलवश तार्क्षी उस युद्ध को देखती रही। एक बार अर्जुन का छोड़ा हुआ एक बाण तार्क्षी के शरीर में से होता हुआ निकल गया। वह मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। दैवयोग से उसके पेट में जो चार अण्डे थे उन्हें बाण से कोई हानि न हुई। तार्क्षी के पृथ्वी पर गिरते ही वे चारों अन्डे उसके पेट से निकल कर एक ओर लुढ़क गये। ठीक उसी समय सुप्रतीक नामक हाथी का घंटा टूट

कर इस प्रकार गिरा कि वे चारों अन्डे उसके अन्दर आगये। इस घटना के बाद बहुत समय तक युद्ध चलता रहा, पर वे चारों अन्डे घंटे के नीचे सुरक्षित बने रहे।

'युद्ध समाप्त होने पर दैव संयोग से शमीक नामक ऋषि अपने शिष्यों के साथ उस ओर आ निकले। उन्होंने रास्ते में पड़ा देख कर उस घंटे को उठाया। उसके नीचे पक्षियों के बच्चों को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि इन बच्चों को ऐसे विकट युद्ध के बीच में इस प्रकार सुरक्षित देख कर मुझे दैत्य-गुरु शुक्राचार्य की वह बात याद आती है जो उन्होंने देवगण की मार से घबरा कर भागते हुये राक्षसों से कहा था। उन्होंने कहा था—'शूरता और यश को छोड़ कर क्यों भाग कर जा रहे हो? जहाँ जाओगे वहीं मृत्यु तुम्हारे पीछे लगी रहेगी। जब तक आयु शेष रहेगी तब तक युद्ध करते हुये भी नहीं मर सकते। और आयु शेष हो जाने पर विधाता के प्रतिकूल कोई भी जीवित नहीं रह सकता। कोई घर में रह कर भी मर जाता है, कोई भागते समय मरता है, कोई खाते-पीते मरता है, कोई भोगविलास करते समय अनायास मर जाता है, कोई घाव या चोट लगने से मरता है, कोई बिना रोग, बगैर घाव-चोट के ही मर जाता है, कोई अस्त्र शस्त्र के प्रहार से मरता है, कोई-कोई तपस्या करते-क

कोई-कोई योगाभ्यास करते-करते मर जाता है। पूर्व समय में इन्द्र ने शम्बर नामक असुर को वज्रसे मारा था, किन्तु उस समय उसकी आयु पूरी नहीं हुई थी,इस कारण वह न मरा। उसी शम्बर को इन्द्रके उसी वज्र के एक ही आघात ने इस समय अनायास नष्ट कर डाला। विना मृत्यु आये और समय पूरा हुये कोई भी नहीं मरता। मरने के भय को छोड़ कर अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।' इन बच्चों के इस घोर संग्राम के बीच में भी जीवित रहने से शुक्राचार्य की वे बातें सत्य सिद्ध हुईं। कहाँ अंडों का गिरना, कहाँ घंटे का ठीक उनके ऊपर आकर पड़ना, और कहाँ मांस, रुधिर और रुण्ड-मुण्ड से भरी हुई इस भयावह संग्राम-भूमि में उनका इस प्रकार जीवित बचना ! दैव की अनुकूलता संसार में बड़े सौभाग्य को प्रकट करने वाली होती है। (दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी।) इन बच्चों को अपने आश्रम में ले चलो और बिल्ली, चूहे, नेवले आदि से बचा कर इनका पालन करो। वैसे तो सभी प्राणी अपने कर्मों के द्वारा सुरक्षित रहते हैं, किन्तु तो भी सभी बातों और कामों में मनुष्य को यत्न करना चाहिए,क्योंकि प्रयत्न करने के बाद फिर कुछ कहने-सुनने को शेष नहीं रह जाता।'

इस प्रकार कह कर शमीक मुनि उन बच्चों को अपने

सुरम्य आश्रम में ले आये और यत्न पूर्वक उन का लालन पालन करने लगे। कुछ समय बाद बच्चे बड़े हुये और उड़-कर सूर्यके रथ तक जा पहुंचे। सूर्य देव के प्रभाव से उन्हें अपूर्व शक्ति और ज्ञान की प्राप्ति हुई। वे नद,नदी, समुद्र वन,पर्वत आदि को देखते हुए फिर अपने आश्रम में लौट आये और शमीक ऋषि को प्रणाम कर मनुष्यों की वाणी में शुद्ध-स्पष्ट शब्दों में बोले--'आप ने हमारे प्राण बड़े संकट के समय बचाये हैं। फिर हमें पाल-पोस कर बड़े यत्न से बड़ा किया। आप का हमारे ऊपर बड़ा उपकार है। आज्ञा दीजिये कि हम आप की क्या सेवा करें।'

पक्षियों के बच्चों के इस प्रकार शुद्ध, स्पष्ट,बुद्धि-विवेक-युक्त वचन सुन कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। ऋषि ने उनसे पूर्व-जन्म का वृतांत और पक्षि-योनि में जन्म लेने का कारण पूछा। बच्चे बोले-'प्राचीन समय में विपुल-स्वान नामक महानुभाव के सुकृश और तुम्बुरू नामक दो पुत्र हुए। यथा समय सुकृश के हम लोगों ने जन्म लिया। हमारे पिता बड़े संयमी, तपस्वी,संतोषी, सत्य-निष्ठ, शुचि-वान,उदार,आचारवान और जितेन्द्रिय थे। एक बार इन्द्र एक बूढ़े पक्षी के रूप में उनकी परीक्षा लेने के लिए आये। उस पक्षी का शरीर बहुत ही जर्जर था, पंख टूटे हुए थे, अंग शिथिल थे, दशा बहुत ही दयनीय थी। ऋषि के

सम्मुख पहुँच, पक्षी ने गिड़गिड़ा कर कहा—'हे विप्रवर! मैं आप की शरण में आया हूँ; आप मेरी रक्षा करें। मैं भूख के मारे मर रहा हूँ, आप मुझे जीवन दान दें। मुझे वृद्ध समझ कर पक्षियों के राजा ने विन्ध्याचल पर्वत से नीचे गिरवा दिया। चोट और भूख के कारण मेरे प्राण व्याकुल हैं। आप भोजन देकर मेरे प्राण बचालें।'

ऋषिको दया आ आई। उन्होंने पक्षी से कहा—'तुमको इच्छानुसार भोजन देकर मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम्हारे लिए कौन-सा आहार दूँ?'

पंक्षी ने गिड़गिड़ा कर कहा—'मैं तो मनुष्य का मांस खाकर ही जी सकता हूँ।'

ऋषि ने उसे बहुत समझाया कि इस बुढ़ापे में तुम मनुष्य के मांस का लोभ छोड़ दो। पर वह किसी दूसरी वस्तु को खाने के लिए तैयार न हो सका। तब हार कर ऋषि ने कहा—'दुष्टों की दुर्भावनाओं की शान्ति कभी नहीं होती। (सर्व्वथा दुष्टभावानां प्रशमो नोपजायते।) मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, इस कारण मैं तुम्हें मन चाहा आहार दूंगा।' यह कह उन्होंने हम लोगों को बुला कर कहा कि तुम लोगों ने मुझसे जन्म लिया है, इस कारण यदि मुझे पूज्य समझते हो तो जो मैं कहूँ उसे करो। हम लोगों ने नम्रता पूर्वक कहा कि आप जो आज्ञा देंगे हम सहर्ष उसका

पालन करेंगे। ऋषि ने कहा कि तुम लोग अपने नश्वर शरीर को इस पक्षी के हित के लिए देदो, यह तुम्हारे मांस को खाकर अपनी भूख शान्त करेगा और तुम्हारे रक्त को पीकर अपनी प्यास बुझायेगा। ऐसे कठोर वचन सुनकर हम लोग दुःखी होकर बोले—'ऐसा भीषण कार्य तो हम लोगों से न होगा। दूसरे के शरीर को बचाने के लिए बुद्धिमान अपना शरीर क्यों नष्ट करे? यदि शरीर बना रहेगा तो अपने कल्याण के लिए बहुत-से धर्म के कार्य किये जा सकते हैं। शरीर के न रहने पर धर्म-पुण्य के कार्य कैसे हो सकते हैं? इसी कारण धर्म के तत्वों को जाननेवाले विद्वानों ने कहा है कि शरीर की सदा सब तरह से रक्षा करनी चाहिए। पुत्र पिता का ऋणी रहता है, किन्तु इसके लिए पिता को अपने पुत्र के शरीर की बलि कदापि न देनी चाहिए। शरीर-रक्षा सबसे बढ़कर धर्म है।'

हमारे ऐसे वचनों को सुनकर ऋषि को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—'तुम लोगों ने पहले मेरी आज्ञा के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा की। बाद में फिर अब शरीर के मोह में पड़कर अपने वचनों के अनुसार चलने से इनकार कर रहे हो। सत्य और प्रतिज्ञा-पालन ही सबसे बढ़कर धर्म है। तुम उससे विमुख हुए, इस कारण तुमको पक्षि-योनि में जन्म लेना पड़ेगा। अब मैं अपना शरीर देकर इस पक्षी

की क्षुधा दूर करूँगा और इसके प्राण बचाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।'

यह कह उन्होंने पक्षी से कहा कि तुम मुझे खाकर अपनी भूख शान्त कर लो। ऋषि के त्याग और सत्य से इन्द्र आश्चर्य चकित रह गये। पक्षी का रूप छोड़कर वे अपने असली रूप में प्रकट हुए और बोले—'हे सत्यव्रत, तपोधन! मैं संसार में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ही पक्षी का रूप धारण कर आपकी परीक्षा लेने के लिए यहाँ आया था। आप धन्य हैं! ऐसा सत्य और शरीर तक दान कर देने का ऐसा सत्साहस दूसरे किसी में भी नहीं है। आप जो चाहेंगे वह आपको प्राप्त होगा। आपका ज्ञान अखण्ड रहेगा। आपके किसी कार्य में कोई विघ्न न पड़ेगा।'

यह कहकर इन्द्र ऋषि से विदा होकर चले गये। उनके जाने के बाद शाप के भय से काँपते हुए हम लोग बोले—'हे पिता! शरीर के राग में पड़कर हमसे भारी अपराध हो गया है। यह शरीर एक गढ़ के समान है। चेतन पुरुष इसका राजा है। मन और बुद्धि उसके मंत्री के समान हैं। ये दोनों आपस में लड़ा करते हैं। तभी राजा का नाश होता है। काम, क्रोध, लोभ आदि सदा इस गढ़ को नष्ट करने का प्रयत्न करते रहते हैं। राग नामक शत्रु नेत्र रूपी द्वार से प्रवेश करता है। मन उसके साथ मिल जाता है।

तब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मन की सहायता पाकर शत्रु इन्द्रिय आदि गढ़ के अन्य साधनों को अपने वश में करके गढ़ को तोड़ने का प्रयत्न करता है। लोभ,क्रोध,मोह आदि उसकी सहायता करते हैं। राग से लोभ होता है,लोभ से क्रोध,क्रोध से सम्मोह,सम्मोह से स्मृति का नाश होता है और स्मृति के नष्ट होते ही बुद्धि नष्ट हो जाती है एवं गढ़ टूट जाता है। यही गति सब प्राणियों की है। हमने राग,लोभ,क्रोध,मोह आदि के कारण भारी अपराध कर डाला,आप हमें क्षमा करें,शाप से छुटकारा दे दें।'

ऋषि ने कहा—'मेरे वचन झूठे नहीं हो सकते। तुम्हें पक्षि-योनि में जन्म तो लेना ही पड़ेगा,किन्तु तुम्हारा ज्ञान नष्ट न होगा। अन्त में तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त होगी।'

शमीक ऋषि ने पक्षि-शावकों के मुख से यह वृतान्त सुनकर उन्हें उपदेश और ज्ञान दिया और फिर विंध्यपर्वत पर जाकर तप करने की आज्ञा दी। वे पक्षी शमीक जी को प्रणाम कर विंध्यपर्वत पर जाकर रहने लगे।'

अध्याय ४

जैमिनि जी का पक्षियों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना। महाभारत के सम्बन्ध में पाँच शंकाएं और उनके उत्तर; इन्द्र के पाँच रूप, वासुदेव का अवतार, विश्वेदेवों का शाप

मार्कण्डेयजी बोले—'हे जैमिनिजी ! इस प्रकार वे द्रोण

के पुत्र पक्षी हुए। उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान है। वे इस समय विन्ध्याचल पर्वत पर रहते हैं। आप वहीं जाकर उनसे ज्ञान प्राप्त कीजिये।'

मार्कण्डेयजी से विदा होकर जैमिनिजी विन्ध्याचल पर गये। वहाँ उन्होंने उन पक्षियों को बहुत शुद्ध-स्पष्ट पाठ करते सुना। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि जब भाई-बन्धु, मित्र-स्वजन आदि सभी छोड़ देते हैं उस समय भी और जन्मान्तर में भी सरस्वती देवी नहीं छोड़तीं। आगे बढ़कर, गुफा के अन्दर जाने पर उन्हें शिला पर बैठे हुए वे पक्षी देख पड़े। उन्होंने पक्षियों से आदर पूर्वक कहा—'आपका कल्याण हो! मैं व्यासदेव का शिष्य जैमिनि हूँ। दैव की इच्छा बड़ी प्रबल है। आप शाप के कारण इस योनि में आये हैं, इसकी चिन्ता न कीजिये। समय के फेर से तप के क्षीण होने पर उच्चकुल के मनुष्य नीचों के यहाँ शरण लेते हैं, दान देने वाले भीख माँगकर गुजर करते हैं, मारने वाले मार खाते हैं। संसार में सभी परस्पर विरोधी बातें संभव हैं। ज्ञान का फल यही है कि सुख-दुःख दोनों में समान भाव रक्खा जाय।'

पक्षियों ने आदरपूर्वक अर्घ्य-पाद्य देकर जैमिनिजी की पूजा की और उन्हें सुख से उत्तम आसन पर बैठालकर कुशल-क्षेम पूछने के बाद आने का कारण पूछा। जैमिनिजी

बोले—'मुझे महाभारत के कुछ स्थलों पर कुछ शंकाएँ हैं, उन्हीं को पूछने के लिए मैं श्रीमार्कण्डेयजी के पास गया था। उन्होंने आप लोगों के पास भेजा है। आप बतलायें कि (१) जो परमेश्वर निर्गुण, सर्वाधार और सब कारणों का कारण है, वह मनुष्य रूप धारण कर वासुदेव क्यों कहलाया? (२) द्रुपदराज की पुत्री कृष्णा एक साथ पाँच पाँडवों की भार्या कैसे हुई? (३) महबलवान बलरामजी ने ब्रह्महत्या के पाप से छूटने के निमित्त तीर्थयात्रा कैसे की? (४) द्रौपदी के जो पाँच महारथी, महात्मा, महाबली पुत्र थे, वे कुमारावस्था में (बिना विवाह के ही) कैसे अनाथों की तरह मारे गये? उनके रक्षक और अभिभावक तो पाँचों पाण्डव थे! ये ही मेरे प्रश्न हैं। आप कृपाकर इनके उत्तर दें।'

पक्षी बोले—'परमपुरुष, अप्रमेय, शाश्वत, अव्यय विष्णु भगवान को नमस्कार है। वे ही सब देवगण के अधीश्वर हैं। विष्णु भगवान के चार स्वरूप हैं। वे तीनों गुणों के परे भी हैं और त्रिगुणात्मक भी हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे अमर हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और बड़े से भी बड़े हैं। वे जन्म और मरण, दृश्य और अदृश्य से परे हैं, सम्पूर्ण जगत में व्याप्त हैं और जगत के आदि कारण हैं। जल में वास करने के कारण उनका नाम नारा-

षण पड़ा। उनके चार रूप हैं। उनका पहला स्वरूप अनिरु-द्देश्य है,जो शुक्ल और ज्योति स्वरूप माना जाता है एवं सर्वव्यापी होने के कारण वासुदेव कहलाता है। यह नारायण की रूप-रंग रहित निर्विकार शुद्धनिष्ठा है, इसे केवल ममता रहित योगी ही प्राप्त हो सकते हैं। भगवान का दूसरा रूप शेषनाग है, जो पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण किए हुए हैं;यह भगवान की तामसी निष्ठा है। उनका तीसरा रूप सात्वकी है जो प्रजा पालन और धर्म संस्थापन के कार्यों में रत रहता है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब भगवान अपनी इसी सात्विकि वृति का आश्रय लेकर अवतार धारण करते हैं और अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना करते हैं। भगवान का चौथा स्वरूप रजोगुण और शेषशायी है। समय-समय पर भगवान ने अपनी सात्वकी वृति का आश्रय लेकर वराह,नृसिंह,वामन,आदि अनेक अवतार धारण किए और इस समय भी मथुरा में प्रकट हुए हैं। वासुदेव की इच्छा के कारण ही देवता,मनुष्य,तिर्यग् आदि योनियाँ स्वभावानुसार प्राप्त होती हैं। धर्म संस्थापन के लिए ही विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं।'

पक्षी बोले—'हे जयमिनिजी अब अपने दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनिए। प्राचीनकाल में इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र तेजस्वी

ब्राह्मण को मारा था;इस कारण इन्द्र को घोर ब्रह्महत्या का पाप लगा और उनका तेज निकलकर धर्म में प्रवेश कर गया। इन्द्र निस्तेज हो गए। इधर प्रजापति त्वष्टा ने अपने पुत्र का मरण सुनकर कोप किया और अपनी जटा उखाड़कर अग्नि में फेंक दी। उससे वृत्तासुर नामक एक बड़ा विकराल दानव उत्पन्न हुआ। उसे अजेय जानकर इन्द्र ने सप्तर्षियों को बीच में डालकर संधि कर ली। कुछ समय बाद उचित अवसर देखकर उन्होंने अपने वज्र से वृत्तासुर को मार डाला। उस समय भी इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी और उनका तेज निकलकर पवनदेव में प्रविष्ट होगया। एक समय इन्द्र ने गौतम ऋषि को धोखा देकर उनकी पत्नी अहिल्या के साथ विहार किया;उस समय भी उनका तेज उनके शरीर को छोड़कर अश्विनी कुमारों में समा गया। कुछ समय के अनन्तर राक्षसों ने पृथ्वी पर आकर राजाओं के कुलों में जन्म लिया और घोर अत्याचार एवम् प्रजा पीड़न प्रारम्भ किया। अधर्म और अत्याचार के भार से पृथ्वी रसातल को जाने लगी। उसकी पुकार सुनकर देवगण ने भूभार उतारने के लिए ,निश्चय किया। और वे यथा समय अपने-अपने अंश से प्रकट हुए। इन्द्र का जो तेज धर्मराज में प्रविष्ट हुआ था उससे युधिष्ठिर का, इन्द्र का जो तेज पवनदेव में प्रविष्ट हुआ था उससे भीम

का और उनका जो तेज अश्विनी कुमारों में प्रविष्ठ हुआ था, उससे नकुल और सहदेव का जन्म हुआ था। इन्द्र ने अपने अंश से अर्जुन को उत्पन्न किया। इस प्रकार स्वयम् इन्द्र पाँच पाण्डवों के रूप में प्रकट हुए और अग्नि से उत्पन्न द्रौपदी उनकी पत्नी हुई।'

पक्षी बोले—'जब महाभारत का युद्ध होना निश्चित हो गया तब बलरामजी बड़े धर्म संकट में पड़े। न तो वे अपने शिष्य और कौरवों के राजा दुर्योधन का साथ दे सकते थे और न अपनी बहन सुभद्रा के पति अर्जुन का। अन्त में उन्होंने सब से अलग रहकर तीर्थ यात्रा करने का निश्चय किया। हृष्ट-पुष्ट और सुखी मनुष्यों से भरी हुई द्वारका को छोड़कर वे रैवतक वन में गए और वहाँ मदिरा-पान एवम् रेवती के साथ विहार करने के अनन्तर वे स्त्रियों को लिए हुए उस स्थान पर गए जहाँ कौशिक, भार्गव, भारद्वाज, गौतम आदि के वंशज ऋषिगण सूतजी से उत्तमोत्तम पौराणिक, धार्मिक कथाएँ सुन रहे थे। मदिरा के नशे में चूर बलरामजी को आता हुआ देख ऋषिगण ने उनका स्वागत किया। किन्तु व्यासासन पर बैठे रहने के कारण सूतजी न उठे। इसमें अपमान समझकर मदिरा के नशे के कारण बलरामजी ने सूतजी के प्राण हरण कर लिए। यह देखकर सब ऋषि उस वन को छोड़कर चले

गए। ऋषियों के चले जाने पर बलरामजी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि बारह वर्ष तक भू-प्रदक्षिणा और तीर्थाटन कर मैं इस पाप का प्रायश्चित करूँगा। इसी कारण महाभारत के युद्ध के समय वे विभिन्न तीर्थों में घूमते रहे।'

पक्षी बोले—'पूर्वकाल में राजा हरिश्चन्द्र धर्म पूर्वक राज्य करते थे। उनके राज्य में किसी को किसी प्रकार का दुःख न था; सभी अपने-अपने धर्म-कर्म में लगे हुए सुख पूर्वक काल व्यतीत करते थे। एक बार राजा हरिश्चन्द्र वन में शिकार खेलने गए। वहाँ उन्हें स्त्रियों का विलाप सुन पड़ा; स्त्रियाँ विलाप करती हुई अपनी रक्षा के लिए पुकार रही थीं। राजा यह कहते हुए उनकी ओर गए कि तुम चिन्ता न करो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। यथार्थ में वह विश्वामित्रजी का आश्रम था, वे उस स्थान पर सब विद्याओं को वश में करने के लिए घोर तप कर रहे थे। विद्यायें उनके घोर तप से त्रस्त होकर रक्षा के लिए चिल्ला रही थीं। विघ्नराजरौद्र किसी तरह से विश्वामित्रजी के तप में विघ्न डालकर विद्याओं की रक्षा करना चाहते थे। राजा हरिश्चन्द्र को रक्षा के लिए वचन-बद्ध होते हुए देख विघ्नराजरौद्र उनके शरीर में प्रवेश कर गए। राजा ने अपने धनुषबाण को सम्हाल कर कहा कि जो दुष्ट मेरे राज्य में

स्त्रियों को सता रहा है उसे मैं अपने बाणों से अभी छिन्न-भिन्न किए डालता हूँ। राजा के वचन सुनकर विश्वामित्रजी का क्रोध भड़क उठा। वे क्रोध से अन्धे होकर राजा को भला-बुरा कहने लगे। क्रोध करते ही उनके तप में विघ्न पड़ गया और विद्यायें उनके शरीर से निकल कर देवलोक को चली गईं। विश्वामित्र को कुपित देख हरिश्चन्द्र भय के कारण काँपते हुए बोले—'मेरा अपराध क्षमा करें। मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता था। मैंने समझा कि कोई दुष्ट अबला स्त्रियों को सता रहा है। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि राजा शस्त्रास्त्र धारण कर प्रजा की रक्षा करे और दान दे।'

विश्वामित्रजी ने क्रोध से लाल होकर कहा—'यदि तुझे धर्मशास्त्र का ज्ञान है तो बतला कि किसके साथ युद्ध करना चाहिए, किसकी रक्षा करनी चाहिए और किसे दान देना चाहिए?'

राजा हरिश्चन्द्र बोले—'विप्रों को और जिनके पास द्रव्य का अभाव हो उन्हें दान देना चाहिए, भयभीत प्राणियों की रक्षा करनी चाहिए और शत्रुओं से युद्ध करना चाहिए।'

राजा के वचन सुनकर विश्वामित्रजी बोले—'यदि तुम राजा हो और राजधर्म को भली भाँति जानते हो तो मुझे

मनचाही दक्षिणा दो क्योंकि मैं विप्र हूँ और दान लेने की इच्छा रखता हूँ।'

राजा ने प्रसन्न होकर कहा—'आप जो भी चाहें, मुझसे माँग लें, मैं आपको सुवर्ण, नगर, राज्य, स्त्री, पुत्र, शरीर, प्राण तक देने के लिए तैयार हूँ।'

विश्वामित्रजी ने राजा से राज्य, सेना, खजाना आदि सब कुछ दान के रूप में ले लिया। जब राजा दान कर चुके तब विश्वामित्र बोले—'अब तुम जिस राज्य को दान में मुझे दे चुके हो, उसी में क्यों ठहरे हुए हो ? यहाँ रहना तुम्हें शोभा नहीं देता।' राजा सबसे मुँह मोड़कर अपनी स्त्री शैव्या और राजकुमार रोहित को लेकर वहाँ से चलने लगे। तब विश्वामित्रजी उन्हें रोककर बोले—'तुमने इतना बड़ा दान किया है, जो राजसूय यज्ञ के बराबर है। किन्तु यह तभी सफल माना जायगा जब तुम इसके उपयुक्त दक्षिणा दोगे। बिना दक्षिणा दिये तुम्हारा कल्याण न होगा।'

राजा ने बहुत समझाया कि स्त्री-पुत्र को छोड़कर मेरे पास इस समय कुछ भी नहीं बचा है, पर विश्वामित्रजी न माने। हारकर राजा ने उनसे कहा कि मैं एक महीने में आपको उचित दक्षिणा दूँगा। यह कहकर वे अपने राज्य को छोड़कर जाने लगे। उन्हें जाते देख प्रजा उनके पीछे-

पीछे जाने को तैयार हो गई। छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, मूर्ख-विद्वान सभी उनके साथ जाना चाहते थे। राजा ने बहुत समझाया। पर कोई भी उनका साथ छोड़कर उस राज्य में न रहना चाहता था। यह देख विश्वामित्रजी बहुत बिगड़े। राजा को धमका कर तथा रानी को डंडे से मार कर कहा—'दिखलाने के लिए राज्य को दान में दे दिया और अब प्रजा को भड़काकर तुम इसे वापस लेने के लिए यहाँ ठहरे हुए हो।'

बुरी बातें सुनकर और अपनी स्त्री को पिटती हुई देखकर भी राजा हरिश्चन्द्र को क्रोध न आया। वे विनय करते हुए विश्वामित्रजी से यही कहते रहे कि मैं अब जाता हूँ। किन्तु विश्वेदेवों से यह अन्याय सहन न हो सका। उन्होंने प्रकट होकर विश्वामित्रजी से कहा कि आप हरिश्चन्द्र ऐसे सत्यव्रती, दानी, त्यागी और सहनशील राजा को इस प्रकार तंग करके घोर पाप कर रहे हैं। उनके वचन सुनकर विश्वामित्रजी ने उन्हें शाप दिया कि तुम मनुष्य योनि में जन्म लो। विश्वेदेवा इस शाप से बहुत भयभीत एवं दुःखी हुए। वे गिड़गिड़ा कर क्षमा माँगने लगे। विश्वामित्रजी ने शान्त होकर कहा—'तुम्हें मनुष्य की योनि में तो जाना ही पड़ेगा, किन्तु न तो तुम्हारा विवाह होगा और न तुम्हारे कोई सन्तान ही होगी। काम-

क्रोध से मुक्त होकर तुम फिर देवत्व को प्राप्त हो जाओगे।'

पक्षी बोले—'हे जैमिनिजी ! वे ही पाँचों विश्वेदेवा पाँडवों के यहाँ द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए थे। शाप के कारण उन्हें कुमारावस्था में ही मरना पड़ा।'

—:o:—

अध्याय ८

राजा हरिश्चन्द्र की कथा

जैमिनि जी बोले—'राजा हरिश्चन्द्र की पूरी कथा सुनने की बड़ी लालसा है।'

पक्षी बोले—'विश्वामित्र जी से विदा होकर राजा काशी पुरी को पैदल गये। नगर के द्वार पर पहुँचते ही विश्वामित्र जी वहाँ खड़े देख पड़े। राजा ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा कि एक महीना बीत रहा है, अब तुम मेरी दक्षिणा दे दो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। राजा ने नम्रता से उत्तर दिया कि अभी एक महीना पूरा होने में आधादिन बाकी है, आपको मैं दक्षिणा दूँगा। विश्वामित्रजी यह कह कर चले गये कि यदि समय रहते दक्षिणा न दोगे तो मैं तुम्हें शाप दूँगा। उनके जाने पर राजा धन के लिए चिन्ता करने लगे। पर उन्हें कोई उपाय न सूझ पड़ा। उन्हें व्याकुल देख उनकी रानी शैव्या बोलीं—'आप चिन्ता छोड़ सत्य का पालन करें। सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है।

बिना सत्य के यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि सभी व्यर्थ हो जाते हैं। सात अश्वमेध और सात राजसूय यज्ञ करने पर भी एकबार असत्य बोलने से उन सब का पुण्य क्षीण हो जाता है। आप मेरे रहते दुःख-क्लेश न उठायें और न सत्य से भ्रष्ट हों। स्त्रियाँ सन्तान के लिए ही होती हैं, मैंने आपको पितृ-ऋण से मुक्त करने के लिए एक पुत्र उत्पन्न कर दिया है। अब आपको मेरी उतनी आवश्यकता नहीं रह गई है। इस कारण अब आप मुझे दक्षिणा के बदले में देकर अपने सत्य की रक्षा कीजिये।'

रानी को बिलख-बिलख कर यह कहते हुए सुनकर राजा का धैर्य छूट गया। वे नाना प्रकार की बातें करते हुए फूट-फूटकर रोने-कलपने लगे। इसी समय उनके पुत्र ने करुणा भरे स्वर में भोजन माँगा। राजा-रानी ने उसे समझाकर शान्त करना चाहा। तब पुत्र बोला—'मेरी जीभ का अगला भाग सूखा जारहा है। भूख से मैं मरा जा रहा हूँ। अब और नहीं सहा जाता।' उसकी बातें सुनकर राजा मूर्छित होकर गिर पड़े। रानी विलाप करने लगीं। इसी समय विश्वामित्र जी वहाँ आये और राजा को मूर्छित देख पानी के छींटे दे-देकर उन्होंने उन्हें सावधान किया। राजा की मूर्छा दूर हुई। उन्होंने आँखे खोलीं, पर विश्वामित्र को सामने देख उन्हें फिर मूर्छा आगई। विश्वामित्र जी ने

फिर उपचार कर उन्हें सावधान किया और कहा--'यदि तुम्हें धर्म का विचार हो तो तुरन्त मेरी दक्षिणा देदो। संसार में सत्य से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। सत्य से ही सूर्य प्रकाशित है, सत्य से ही पृथ्वी प्राणियों को धारण किये हुए है, स्वर्ग सत्य में ही प्रतिष्ठित है, सत्य ही पर धर्म स्थित है। तुम सत्य का पालन करो और मेरी दक्षिणा दो, नहीं तो मैं शाप दूँगा।'

यह कह विश्वामित्रजी फिर चले गये। राजा फिर चिन्ता और विलाप करने लगे। अन्त में उन्हों ने रानी के वचन मान लिये और नगर में जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि मैं अपनी स्त्री को बेंचता हूँ, जो चाहे स्वर्ण देकर उसे अभी खरीद ले। कुछ समय बाद एक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आया। उसने राजा की बातें सुनकर रानी को देखा और स्वर्ण देकर दासी के रूप में उसे खरीद लिया। फिर बाल पकड़ कर उसे खींचकर एक ओर ले जाने लगा। अपनी माता को इस प्रकार जाते देख राजकुमार रोता हुआ उसके पीछे-पीछे दौड़ा। उसे अपने पीछे आते देख ब्राह्मण ने उसे धमकाकर तथा मार कर आने से रोकना चाहा, पर मारखाने पर भी रोहित न रुका। हारकर ब्राह्मण ने कुछ सोना देकर उसे भी खरीद लिया। ब्राह्मण दोनों को लेकर चला गया। राजा स्त्री-पुत्र के वियोग में विलाप करने लगे।

कुछ समय बाद विश्वामित्र जी वहाँ आये। राजा ने वह सोना उनके आगे रख दिया। सोने को देखकर विश्वामित्र जी बहुत कुपित हुए और बोले—'क्या इतने बड़े सत्कर्म की इतनी ही दक्षिणा होगी? यदि तुम शाप से बचना चाहते हो तो और दक्षिणा दो।' यह कहकर वे चले गये। राजा और कोई उपाय न देखकर अपने शरीर को बेंचने के लिये तैयार होगये। इसी समय भयंकर रूप वाला एक चाण्डाल मुण्डों की माला पहने हुए वहाँ आया और बोला—'मैं स्वर्ण देकर तुम्हें खरीदना चाहता हूँ।'

उसके रूप को देखकर हरिश्चन्द्र को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने—'कहा मैं नीच कर्म करने वाले चाण्डाल के हाथ नहीं बिकना चाहता, मैं चाण्डाल का दास कैसे हो सकता हूँ।' इसी समय विश्वामित्र जी वहाँ आये और बिगड़कर बोले—'जब यह चाण्डाल काफी स्वर्ण देने के लिए तैयार है तब तुम मेरी दक्षिणा देकर अपने सत्य का पालन क्यों नहीं करते?'

हरिश्चन्द्र ने गिड़गिड़ा कर कहा—'सूर्यवंश में उत्पन्न राजा होकर मैं इस चाण्डाल की दासता कैसे स्वीकार कर सकताहूँ। आप स्वयम् मुझे अपना दास बनाकर दक्षिणा पूरी कर लीजिए, मैं आपकी सब तरह से सेवा करूँगा। मैं आपकी किसी भी आज्ञा का उलंघन न करूँगा।'

जब विश्वामित्र जी ने देखा कि राजा किसी तरह भी चाण्डाल का दासत्व स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, तब उन्होंने कौशल से काम लिया। उन्होंने राजा से कहा कि जब तुम मेरे दास हो चुके और मेरी हरएक आज्ञा के पालन करने की प्रतिज्ञा कर चुके हो तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम इस चाण्डाल से सोना लेकर मुझे दे दो और इसके साथ जाकर इसकी सेवा करो। लाचार होकर राजा को चाण्डाल के हाथ बिक जाना पड़ा। चाण्डाल से स्वर्ण लेकर विश्वामित्रजी चले गए। चाण्डाल ने राजा को बांध लिया और वह डण्डे मारता हुआ अपने स्थान पर लेगया। राजा बहुत दुःखी हुए। चाण्डाल ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम मेरी ओर से श्मशान में रहकर मुर्दों के ऊपर कर वसूल किया करो। उसमें से छठा हिस्सा राजा के खजाने में जायगा, तीन हिस्से मैं लूंगा और बाकी दो हिस्से में तुम्हें अपना निर्वाह करना होगा। चाण्डाल की आज्ञा पाकर हरिश्चन्द्र को उस घृणित स्थान में रहना पड़ा। वे चिथड़े पहनकर चिता की भस्म से सने हुए किसी तरह कष्ट पूर्वक समय बिताने लगे। श्मशान में रहते-रहते उन्हें बारह महीने व्यतीत हो गये। एक बार स्वप्न में उन्होंने अपने को डोम-डोमिनी के गर्भ से उत्पन्न होते हुए देखा। फिर देखा कि वे डोम बालक के रूप में श्मशान

में कार्य कर रहे हैं और एक समय कुछ ब्राह्मणों के साथ आकर विश्वामित्र की-सी आकृति वाले एक मनुष्य उन्हें शाप दिया कि तू घोर नरक में जा। शाप सुनते ही राजा ने देखा कि यम के दूत उनके जीव को डोम बालक के शरीर से निकालकर नरक में ले गए। वहाँ उन्हें जलते हुए तेल के कुण्ड में डालकर खूब कष्ट दिया गया। फिर उन्हें तीक्ष्ण अस्त्रों से काटा गया और पीप, रुधिर आदि का भोजन देकर नाना प्रकार की नारकीय यातनायें दी गईं। इस प्रकार सौ वर्ष तक नरक की यातनाएँ भोगने के बाद उनको क्रमशः शूकर, कुत्ता, गधा, हाथी, बन्दर, बकरा, बिडाल, कौआ, कीट, मछली, कछुआ, मुर्गा, तोता, मैना, सर्प, वृक्ष आदि की योनि में सौ वर्ष घूमना पड़ा। इसके बाद उनका जन्म सूर्य वंश में हुआ। वहाँ राज्य, स्त्री-पुत्र आदि को जुए में हारकर वन में जाना पड़ा और वन में उन्हें एक सिंह ने खा लिया। अनन्तर विश्वामित्र के कहने से यमदूत नाग-पाश में बाँधकर यमराज के पास ले गए। वहाँ बारह वर्ष तक यातनायें भोगने के अनन्तर यमदूतों ने उन्हें पृथ्वी पर फेंक दिया। पृथ्वी पर गिरते समय भय से उनकी आँखें खुल गईं। राजा आँखें मलते हुए उठ बैठे। ऐसा विचित्र स्वप्न देखने के कारण उनका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। उन्होंने डोमों के पास जाकर

अपने विचित्र स्वप्न का हाल बतलाया। वे तरह-तरह की बातें करने लगे। कुछ समय बाद सर्प के काटने से कुमार रोहित की मृत्यु हो गई। रानी रोती-कलपती उसे श्मशान में लेकर आई। परिश्रम, क्लेश और चिन्ता के कारण उन लोगों की आकृति इतनी बदल गई थी कि न तो रानी राजा को पहचान सकीं और न राजा ही रानी को। राजा ने आकर उससे मृतक जलाने के लिए कर मांगा। रानी ने कहा मेरे पास कर देने के लिए कुछ भी नहीं है। यह कहकर वह अपनी पहली बातों को एवं अपने पर पड़ने वाले क्लेशों और संकटों का वर्णन करती हुई विलाप करने लगी। उन बातों को सुनकर तथा रोहित के राजसी चिन्हों को देखकर राजा ने रानी को पहचाना और राजा की आवाज सुनकर रानी ने उन्हें जाना। दोनों एक दूसरे को देखकर खूब रोये। रानी ने विलाप करते हुए उनसे श्मशान में रहने का कारण पूछा। राजा ने सब हाल बतला कर कहा'—तुम अपने ब्राह्मण मालिक की आज्ञा न टालना, न काम करने में किसी प्रकार की त्रुटि ही करना। मैं तो चाण्डाल का खरीदा हुआ दास हूँ। मैं यदि इस समय पुत्र रोहित को बिना कर लिये जलाने देता हूँ तो मुझे उस जन्म में फिर चाण्डाल का जन्म लेकर श्मशान में इसी घोर कर्म को करना पड़ेगा। इस कारण मैं तो अग्नि में

प्रवेश कर अपना यह शरीर छोड़े देता हूँ।' यह कह, तथा रोहित के शव को गले से लगाकर खूब विलाप करने के बाद राजा मरने के लिए तैयार हो गये। रानी भी उनके साथ सती होने का उपक्रम करने लगीं। राजा ने चिता बनाकर रोहित के शव को उस पर रक्खा, फिर सब देवगण को नमस्कार कर उस पर चढ़ने लगे। इसी समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, विश्वेदेवा, यम, वरुण आदि सभी देव-गण वहाँ प्रकट हो गये। धर्मराज ने राजा को ऐसे घोर कर्म से रोका। इन्द्र ने अमृत के द्वारा रोहित को फिर जीवित कर दिया और राजा से रानी सहित स्वर्ग चलने के लिए कहा। राजा ने सबको प्रणामकर कहा कि मेरा स्वामी तो चाण्डाल है, मैं उसकी आज्ञा के बिना अकेला स्वर्ग कैसे जाऊँ। धर्मराज ने हँसकर कहा कि तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए और संसार में तुम्हारी कीर्ति फैलाने के लिए ही मैंने चाण्डाल का रूप धारणकर तुम्हें श्मशान में रक्खा था। अब मैं तुम्हें दासता से मुक्त करता हूँ।

राजा ने प्रसन्न होकर फिर सब देवगण को नमस्कार किया। फिर विनय की कि अयोध्या की प्रजा के धन से ही मैंने शुभकर्म किये हैं, मैं उनका सेवक और ऋणी हूँ। उनके बिना मैं अकेला स्वर्ग नहीं जा सकता। इन्द्र ने बहुत समझाया कि सब प्रजा स्वर्ग नहीं जा सकती, सबको

अपने कर्मों के अनुसार अलग-अलग फल भोगना पड़ता है। पर राजा अपनी बात पर अटल रहे। हारकर देवगण ने अयोध्या की सब प्रजा को स्वर्ग जाने की अनुमति दे दी। विश्वामित्रजी ने राजा से क्षमा माँगी और उनका राज्य उन्हें वापस दे दिया। देवगण के कहने से राजा ने अपने पुत्र रोहिताश्व को अयोध्या के सिंहासन पर बैठाल दिया। फिर सब प्रजा को लेकर वे दिव्य विमानों पर सवार हो स्वर्ग को चले गये। दैत्य-गुरु शुक्राचार्य ने उनके तेज को देखकर कहा कि सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का दान, उनकी सहनशक्ति, उनका शील, विवेक और तप विचित्र हैं। उनके समान कोई पुण्यवान नहीं है।'

अध्याय ६

आडी-बक युद्ध, वशिष्ठ-विश्वामित्र पक्षी

पक्षी बोले—'महर्षि वशिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जिस समय विश्वामित्रजी ने छलकर राजा हरिश्चन्द्र जी से उनका राज्य लिया और उन्हें चाण्डाल के हाथ बेचा उस समय वशिष्ठजी बारह वर्ष का व्रत लेकर गंगाजल में तप कर रहे थे। तप की अवधि समाप्त होने पर जब वे बाहर निकले तब उन्हें विश्वामित्रजी के छल और राजा हरिश्चन्द्रजी के घोर संकटों की सूचना मिली। अपने

शिष्य, राजा हरिश्चन्द्र की दीन दशा और असह्य क्लेशों का उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सन्तप्तभाव से कहा—'हे विश्वामित्र! तुम बहुत ही नीच प्रकृति के हो। तुमने पूर्वकाल में मेरे सौ पुत्रों का वध किया था और मुझे अनेक प्रकार से कष्ट दिया था, किन्तु मुझे उस समय उनसे वैसा क्रोध और सन्ताप नहीं हुआ था जैसा कि इस समय धर्मात्मा, प्रजापालक, सत्यवादी, देव-ब्राह्मण-पूजक, क्षमा-शील, परोपकारी, दानी, निष्पाप, निरभिमानी राजा हरिश्चन्द्र के राज्य-भ्रष्ट होने और स्त्री-पुत्र सहित नीच कर्म करने के लिए विवश किये जाने पर हुआ। तुम्हारा यह घोर कर्म मैं सहन नहीं कर सकता इस कारण मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम बगुले की योनि को प्राप्त हो जाओ।'

वशिष्ठजी के घोर शाप को सुनकर विश्वामित्र जी ने भी क्रोध कर शाप दिया कि हे वशिष्ठ! तुम सारस हो जाओ। शाप के कारण विश्वामित्र जी को अपना शरीर छोड़कर बगुला होना पड़ा और वशिष्ठ जी को सारस। पक्षी होने पर भी दोनों महर्षियों के हृदय से वैर-भाव और क्रोध दूर न हुआ। वे एक दूसरे को मारने के लिए घोर प्रहार करते हुए भीषण युद्ध करने लगे। उनके भीषण युद्ध से बड़ा लोक-क्षय होने लगा, पृथ्वी काँपती हुई रसातल को जाने लगी। सभी प्राणी त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। संसार को

इस प्रकार संकट में देख ब्रह्माजी देवगण को लेकर उस स्थान पर गये जहाँ दोनों महर्षि युद्ध में रत थे। ब्रह्मा जी ने दोनों के बीच में खड़े हो कर उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर शान्त किया, अपने प्रभाव से शाप का दूर कर उन्हें फिर पहले का रूप दिया और यह कहते हुए उन्हें आपस में मिलाया कि ब्राह्मण का सब से बड़ा बल तप, क्षमा और शान्ति ही है; विश्वामित्र जी ने तो राजा हरिश्चन्द्र का उपकार ही किया है, क्योंकि उन्हीं की प्रेरणा से उनके पापों का क्षय हुआ, उनका यश पृथ्वी पर अचल रूप से फैल गया और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। ब्रह्माजी के समझाने से दोनों महर्षियों ने बैर भाव छोड़कर मेल कर लिया। वे अपने घोर कर्मों को सोचकर बहुत लज्जित हुए। ब्रह्माजी ने उन्हें समझाकर शान्त किया। सब अपने-अपने स्थान पर चले गये। इतिहास में यही आडी-बक युद्ध के नाम से प्रख्यात है।'

—:०:—

अध्याय १०-११

पिता-पुत्र सम्वाद, वेद का धर्म धर्म नहीं,

कर्मों के अनुसार जन्म, सुख, दुःख,

जैमिनिजी बोले—'कृपा कर बतलायें कि यह जीव किस प्रकार जन्म लेता है, कर्मके फल किस प्रकार भोगने पड़ते हैं?'

पक्षी बोले—'आपने बड़े कठिन प्रश्न किये हैं। पूर्वकाल में इसी प्रकार के प्रश्न एक ब्राह्मण ने अपने सुमति नामक पुत्र से किये थे। उन्होंने जो उत्तर दिये थे, मैं आपसे उन्हीं को सुनाता हूँ। प्राचीन समय में एक भृगु-वंशी कर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। उसने सुमति नामक अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। फिर पुत्र को उपदेश दिया कि तुम विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन करो, फिर विवाह कर गृहस्थाश्रम में सुख भोगो, इसके बाद पुत्र उत्पन्न कर वान-प्रस्थ आश्रम में जाना और अन्त में सब से मोह-ममता छोड़ कर संन्यास ग्रहण करना एवं ब्रह्म में लीन होजाना। अनेक बार पिता ने पुत्र को समझाया, पर उसने कुछ ध्यान न दिया। तब पिता बहुत दुखित हुआ। पिता को दुःखी देख पुत्र बोला—'हे पिता! आप चिन्ता न करें। मैंने वेद, शास्त्र, शिल्प कला, आदि का विधि पूर्वक अध्ययन किया है। मेरे हजारों जन्म हो चुके हैं और उन सब का मुझे स्मरण है। मैंने जो-जो दुःख भोगे, जो-जो सुख पाये, उन सबका मुझे स्मरण है। कभी मैं राजा हुआ, कभी कैदी, कभी धनी, कभी कंगाल, कभी विद्वान, कभी मूर्ख, कभी सुन्दर हृष्ट-पुष्ट, कभी कुरूप-क्षीण, कभी गुणी, कभी गुण-हीन। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि नाना योनियों में घूमना पड़ा और हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग,

भाव-अभाव, संतोष-अशान्ति, दुःख-सुख आदि का अनुभव करना पड़ा। अन्त में मुझे वह ज्ञान प्राप्त हुआ जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। अब मैं उसी के बल पर पर-ब्रह्म पद को प्राप्त करूँगा। वेदों, शास्त्रों के अध्ययन से मुझे वह शान्ति न मिल सकी थी जो इस ज्ञान के प्राप्त होने पर मिल रही है, इस कारण वेदों में वर्णित क्रिया-कलाप से अब मेरा संतोष नहीं होता। इस ज्ञान के कारण मुझे पूर्ण तृप्ति प्राप्त हुई है, मैं निरभिमान होगया हूँ और मुझे पूर्ण आत्मज्ञान होगया है, इस कारण मुझे वेद-शास्त्र से अब कोई प्रयोजन नहीं है। वेदों में वर्णित धर्म अब मेरे लिए धर्म नहीं है, क्योंकि मैं अब जीवन-मुक्त हो चुका हूँ।"

पिता ने आश्चर्य से पूछा—'तुम्हें तो हम लोग महा-मूर्ख मानते थे, किन्तु तुम्हारी बातों से विदित होता है कि तुम सब से अधिक ज्ञानी हो। यह तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान इस समय किस प्रकार प्रकट हुआ? तुम अपने पूर्व जन्मों का वृत्तान्त मुझे बताओ।'

पुत्र बोला—'बहुत समय पहले मैंने एक ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। उस जन्म में पूर्व संस्कारों के कारण आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर सका था। बराबर योगाभ्यास, सत्संग और विचार-शोधन के कारण मैं परमनिष्ठा को प्राप्त हो

गया, एवम् निरन्तर परमात्मा में लीन रहने लगा। कुछ समय बाद अनेक विद्वान आकर अपनी-अपनी शंकाओं को मेरे उपदेशों के कारण दूर करने लगे। इस प्रकार मैं उनका आचार्य बन गया। किन्तु अभिमान के कारण धीरे धीरे मेरा वह सात्विक भाव दूर होगया, मेरा ज्ञान शनैः शनैः नष्ट होगया, मैं मोह से घिर गया। उसी मोह की स्थिति में मेरी मृत्यु हुई, इस कारण मुझे फिर जन्म-मरण के बन्धन में फँसना पड़ा। किन्तु इस जन्म में मुझे फिर दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। मुझे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो आया है। अब मैं इन्द्रियों को जीत कर इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ जिससे मैं फिर मोह और अज्ञान में न फँसूँ। मैंने पूर्व जन्म में ज्ञान का दान किया था इस कारण मुझे इस जन्म में सभी जन्मों का स्मरण है और मोक्ष प्राप्त करने के साधन उपलब्ध हैं। अब मैं एकान्तवास कर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा। आप मुझे विवाहादि के बन्धन में डालकर सत्-पथ से विचलित न कीजिए। आपको जो कुछ शंकायें हों उन्हें मैं दूर कर आप के ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ।'

पिता ने संसार की स्थिति, जीव के जन्म लेने और नाना योनियों में भ्रमण करने, कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के भोगों आदि के सम्बन्ध में पूछा। पुत्र ने कहा—

'यह संसार चक्र बड़ा विचित्र है। मनुष्य का शरीर विभिन्न वायुओं द्वारा संचालित होता है। दान, धर्म, दया, परोपकार, के द्वारा ही जीव सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। उत्तम कर्म करने वाले को शरीर छोड़ते समय कष्ट नहीं होता और परलोक में भी उसे सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। पाप कर्म करनेवाला दुष्ट प्राणी शरीर छोड़ते समय बड़ा कष्ट पाता है। यमदूत कठिन पाशों में बाँधकर बड़े ही विकट मार्ग से उसे यमलोक में ले आते है। वहाँ यमराज उसके कर्मों के अनुसार उसे रौरव आदि घोर नरकों में यातनाएँ भोगने के लिए डाल देते हैं। नाना प्रकार के नरकों की भीषण यातनाएँ भोगने के अनन्तर वह बहुत समय बाद कृमि, कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदि की योनियों में दुःख भोगता हुआ घूमता है। फिर किसी प्रकार कुरूप,अंग हीन, नीच वर्ण की योनि में जन्म पाता है। इस प्रकार नाना प्रकार के कष्टों को भोगने के अनन्तर जब उसके पापों का भोग पूरा हो जाता है तब उसे उत्तम वर्ण की मनुष्य योनि प्राप्त होती है। यदि इसी योनि में वह सत्कर्मों द्वारा अपने को सुधार लेता है तो उसे सद्गति प्राप्त होती है। पुण्यात्मा के मरने पर देवदूत उसे दिव्य विमानों में बैठालकर स्वर्ग को ले जाते हैं। उनके आगे-आगे अप्सरायें नृत्य करती जाती हैं और

गन्धर्व गाते जाते हैं। स्वर्ग में नाना प्रकार के सुखों को भोग करने के बाद वे फिर पृथ्वी पर किसी उत्तम कुल में जन्म लेते हैं। माता के गर्भ में पहले बुलबुला, फिर पिण्ड बनता है। यथा समय उस पिण्ड से पाँच अंग और आँख आदि उपांग प्रकट होते हैं। फिर त्वचा, रोम आदि उत्पन्न होते हैं। गर्भ में प्राणी सिकुड़ा हुआ बड़े कष्ट से रहता है। माता के खाये हुए आहार से ही उसकी पुष्टि होती है। मल-मूत्र और अग्नि के कारण उसे बड़ी यातना भोगनी पड़ती है। यथा समय प्राणी बड़े कष्ट से माता के गर्भ से किसी तरह बाहर आता है। बाहर आने पर उसे मोह और अज्ञान घेर लेता है। बड़े होने पर वह संसारी बातों में फँस जाता है और अच्छे बुरे कर्म करता हुआ शक्तिहीन और वृद्ध हो जाता है। वृद्धावस्था में उसको बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं, किन्तु मोह और अज्ञान के कारण उसे माया से छुटकारा नहीं मिलता। इस प्रकार वह अपने कर्मों के कारण जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। गर्भ में तो दुःख होता ही है, बाल्यावस्था में उसे दूसरों के भरोसे रहने के कारण दुःख उठाना पड़ता है, जवानी में ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध आदि के कारण उसे सदा चिन्तित और दुःखी रहना पड़ता है, वृद्धावस्था में इन्द्रियों के शिथिल हो जाने और स्त्री-पुत्रों की उपेक्षा के कारण उसे

भारी क्लेश सहना पड़ता है, इस प्रकार प्राणी को जन्म लेने पर दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है। ऐसी दशा में मैं वेद-शास्त्रों के अनुसार चलकर क्यों दुःख का भागी बनूँ, मैं क्यों न मोक्ष प्राप्ति में लगूँ।'

अध्याय १२

नारकों का वर्णन

पिता ने नरकों का वर्णन पूछा। सुमति नामक पुत्र बोले—'नरक अनेक हैं। प्रत्येक में पापियों को भिन्न प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। रौरव नरक का विस्तार दो हज़ार योजन है और उसकी सारी भूमि अंगारों से भरी हुई है। महा रौरव नरक का विस्तार बारह हज़ार योजन है और उसमें अग्नि की भीषण ज्वालाएँ उठती रहती हैं। तम नामक नरक अन्धकार और शीत से परिपूर्ण है और वहाँ बर्फ के पहाड़ उड़-उड़ कर पापियों के अंगों को चूर-चूर करते रहते हैं। निकृन्तन नामक नरक में पापियों का शरीर घूमता और तिल-तिल करके कटता रहता है। अप्रतिष्ठ नामक नरक में पापी घटी-यंत्र पर बैठालकर घुमाया जाता है और उसका शरीर छेदा और काटा जाता है। असिपत्र नामक नरक में तलवार की तरह तेज पत्ते हैं

और नीचे से अग्नि की ज्वालाएँ उठती रहती हैं एवम् ऊपर से सूर्य की प्रचण्ड किरणें जलाती रहती हैं। शिकारी कुत्ते, भेड़िये आदि भयंकर जीव उसके मांस को नोच-नोचकर खाते हैं। प्यास के मारे उसका तालू सूख जाता है। तप्तकुम्भ नामक नरक अग्नि की ज्वालाओं, उबलते तेल और गरम बालू से पूर्ण है। वहाँ पापियों को भूना, जलाया जाता है। गिद्ध, कौवे आदि उसकी आँखों, अँत-ड़ियों को नोंच-नोंचकर खाते हैं। पापियों को उबलते हुए तेल के कड़ाहों में डाल दिया जाता है। इस प्रकार घोर कर्म करने वाले प्राणियों को भीषण नरकों की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।'

अध्याय १३-१५

वैश्य-यमपुरुष सम्वाद; किस कर्म का क्या फल भोगना पड़ता है

पुत्र ने कहा—'इस जन्म से पहले सातवें जन्म में मैं एक वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ था। उस जन्म में मैं ने एक निरीह गौ को सताया था, इस कारण मुझे सौ वर्ष तक घोर नरकों की जघन्य यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। इस बीच में सहसा मेरी सब यातनाएँ दूर हो गईं और मुझे स्वर्ग सुख का अनुभव होने लगा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। बाद में मुझे

विदित हुआ कि एक महात्मा पुरुष के उस ओर आने से ही ऐसा हुआ है। एक भयंकर यमदूत एक दिव्य पुरुष को मार्ग बतलाता हुआ उस ओर से ले जा रहा था। नरकों में पड़े हुए आर्त प्राणियों की घोर यातनाएँ देख, उन महात्मा ने यमदूत से कहा—'मैं क्यों इस घोर स्थान पर लाया गया? जनक के कुल में मैं विपश्चित्ति के नाम से प्रकट था। मैंने तो सदा उत्तम कर्म, परोपकार, सदाचरण, आदि में ही अपना सारा समय व्यतीत किया है। मैंने कभी किसी को कष्ट नहीं दिया, मन में भी पाप कर्म का स्मरण नहीं किया। मैं सदा देव, पितर, सत्पुरुषों की पूजा-सेवा में लगा रहा, निरंतर दीन-दुःखियों की सेवा-सहायता ही करता रहा। फिर क्यों मुझे नरक आना पड़ा?'

यमदूत बोला—'इस में सन्देह नहीं कि आप ने सदा पुण्य-कार्यों में ही समय व्यतीत किया है, किन्तु प्रमादवश आप से एक अनुचित कार्य हो गया था। विदर्भराज-कन्या आप की रानी पीवरी एक बार ऋतुमती हुई, किन्तु आपने उसे त्याग कर रूप के मोह के कारण केकय-राजपुत्री अपनी अन्य रानी सुशोभना के साथ विहार किया। ऋतु काल में पितर गण पत्नी में उसी प्रकार विहार चाहते हैं जिस प्रकार यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में देवगण आहुति की कांक्षा करते हैं। ऋतुमती पत्नी को संतुष्ट न करने से ही आप को

इस घोर नरक के चक्र में फंसना पड़ा। अब आप अपने अनन्त शुभ-कर्मों को भोगने के लिए स्वर्ग में चलिये।'

राजा विपश्चिति ने पूछा कि इन विभिन्न नरकों में पड़े हुए ये प्राणी जो घोर यातनाएं सहन कर रहे हैं इस का क्या कारण है? यमदूत ने कहा—'मनुष्य को सभी शुभ-अशुभ कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। कोई भी कर्म बिना भोगे नहीं कटता। पाप और पुण्य भोगने से ही कटते हैं। कर्मों के अनुसार ही जीव को नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेना पड़ता है और भांति-भाँति के भोग भोगने पड़ते हैं। जिस प्रकार वृक्ष का बीज जल और पृथ्वी के अनुसार छोटा-बड़ा वृक्ष उत्पन्न करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार देश, काल, पात्र, कर्म के अनुसार एक ही कर्म छोटे-बड़े फल का कारण होता है। अर्थात एक ही कार्य एक स्थान, समय पर कम फल देने वाला होता है और ठीक वही कर्म दूसरे स्थान और समय पर कहीं अधिक फल प्राप्त कराता है। कभी थोड़े-से पाप कर्म से महान यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और किंचित मात्र पुण्य के प्रभाव से अक्षय स्वर्ग-सुख प्राप्त हो जाते हैं। जान-अनजान में किये गये अनेक जन्मों के पाप-पुण्य आत्मा के साथ संबंधित रहते हैं। वे धीरे-धीरे भोगने से ही शनैः-शनैः छूटते हैं। अपने-अपने कर्मों के शुभ-अशुभ फलों के अनुसार मनुष्य को स्वर्ग-नरक में

जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य दूसरों की स्त्रियों और धन को हरण करते हैं उनकी आँखें नरक में गिद्ध नोंचते हैं। जो झूठ बोलते हैं, वेद-शास्त्रों के उलटे अर्थ बतलाते हैं, गुरुजनों की निन्दा करते हैं, चुगली करते हैं नरक में उनकी जीभ बार-बार काटी, नोंची और जलाई जाती है। जो दूसरों को संताप देते हैं उन्हें तप्त बालू और अग्नि की लपटों में जलना पड़ता है। जो अपने माता-पिता तथा आश्रित स्वजनों अथवा असमर्थ जन को भूखा रखकर आप पेट भर भोजन करते हैं, उन्हें नरक में या तो मलमूत्र-पीव आदि से अपनी भूख शान्त करनी पड़ती है, या अन्न के बिना तड़पना पड़ता है। जो अपने जिस अंग से व्यर्थ में दूसरों को कष्ट देते हैं, नरक में उन्हीं अंगों को काटा, जलाया, छेदा और नोंचा जाता है। लोभ में पड़कर जो अपने पुत्र, कन्या, स्त्री, माता, पिता, आश्रितजन को त्याग देते हैं, नरक में यमदूत उन्हें उन्हीं का माँस काट कर खाने को देते हैं। दिन में स्त्री से विहार करने और दूसरों की स्त्रियों को भ्रष्ट करने वालों को नाना प्रकार की घोर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं, उन के अंग प्रत्यंग जलाये, काटे, नोंचे, छेदे जाते हैं, उन्हें बिना अन्न-जल के तड़पना पड़ता है। जो पतित का दान लेते हैं उन्हें ऊपर से गिरना और पत्थर के अन्दर कीड़ा होना पड़ता है। जो उप-

कार करने वाले के साथ कृतघ्नता करते हैं, उन्हें अंधे, बहरे, गूंगे, होकर भूख प्यास के कष्ट भोगने पड़ते हैं और ज्वालाओं में जलना पड़ता है। जो ब्राह्मण श्राद्ध के अन्न पर और दूसरों की भिक्षा पर अपनी जीविका चलाते हैं, उनके अंगों में घोर सर्पों के विष का प्रवेश कराया जाता है। सोने की चोरी, गुरुपत्नीगमन एवं मदिरा पान करने वाले सदा जलाये जाते हैं और उनके अंग-अंग काटें-छेदे जाते हैं। इस प्रकार घोर नरकों की यातनाओं को भोगने के बाद इन पापियों को नरक से निकलने पर जिस-जिस योनि में जाना पड़ता है उनका सब वर्णन सुनिये। जो विप्र पतित से दान लेता है, वह गधे की योनि में और जो पतित को यज्ञ कराता है वह कीटि की योनि में जाता है। दूसरों का निरादर करने वाला कुत्ता होता है, पिता का अपमान करने वाला और दूसरों की स्त्रियों को चाहने वाला गदहा होता है। पति का अपमान करने वाली स्त्री वानर की योनि पाती है। पर, निन्दा करने वाला राक्षस होता है। स्त्री और बालक को मारने वाला कीड़े-मकोड़े की योनि में जन्म लेता है। अन्न चुरानेवाला चूहा, या बिल्ली; मांस चुराने वाला कौआ या बाज; दूध, दही, नमक चुराने वाला कोढ़ा, बिच्छू, बगुला; मधु चुराने वाला मक्खी; मीठा चुराने वाला चींटी; शाक और वस्त्र चुराने वाला पक्षी; सुगंधित

वस्तुओं को चुराने वाला छछूँदर; फल चुराने वाला घुन का कीड़ा; सवारी चुराने वाला लंगड़ा; भूमि, स्वर्ण, गौ आदि हरण करने वाला भीषण आकृतिवाला; दूसरे की स्त्री को रखने वाला नपुंसक; बिना समिधा के हवन करने वाला अजीर्ण का रोगी होता है। जिसकी आकृति, आचरण स्वभाव, व्यवहार दूषित, जघन्य और भीषण हों उन्हें नरक से लौटे हुए पापी समझना चाहिए। और जो सुन्दर, स्वस्थ, अच्छे स्वभाव के, गुणी, विद्वान, नम्र, परोपकार रत, पुण्यशील हों वे स्वर्ग से आये हुये होते हैं।'

यह कह कर यमदूत ने राजा विपश्चित्ति को स्वर्ग में चलने के लिए कहा। तब नरकवासियों ने प्रार्थना की—'हे महाप्रभो! आप थोड़ी देर और यहाँ रुकें, कारण कि आपके संसर्ग से आने वाली वायु के कारण हमारी नारकीय यातनाएँ बन्द हो गई हैं।' राजा ने आश्चर्य से यमदूत से इसका कारण पूछा। यमदूत ने उत्तर दिया—'आप के शुभ कर्मों के प्रताप से यहाँ की भीषण यातनाओं का प्रभाव नष्ट हो गया है। आप के सामने नरक में भी पष्ट नहीं हो सकता। अब इन दुष्टों को नरकों की यातनाएं भोगने के लिए छोड़कर आप स्वर्ग को चलिए।' राजा ने कहा—'तब मैं यहीं रहना चाहूँगा, क्योंकि जो सुख पीड़ितों के दुःखों को दूर करने में है, वह स्वर्ग आदि के भोग भोगने में नहीं है।

किसी भी अन्य कार्य से इतना सुख, इतना पुण्य नहीं हो सकता, जितना कि आर्त प्राणी की पीड़ा-यातना को दूर करने से होता है। उस मनुष्य को धिक्कार है जो पीड़ितों की सहायता नहीं करता। जो असहाय, दीन, दुखी, बालक, वृद्ध, संतप्त प्राणियों को सताता है वह मनुष्य नहीं राक्षस है। नरकों में पड़े हुए दुःखी प्राणियों को घोर यातनाओं से छुड़ाने से बढ़कर मैं स्वर्ग-सुख को भी नहीं समझता। मुझे तो यहीं स्वर्ग से बढ़कर सुख मिल रहा है। तुम जाओ, मैं तो यहीं रहूँगा।'

यमदूत ने राजा को बहुत समझाया, पर वे वहाँ से न हिले। तब दिव्य विमान लेकर देवराज इंद्र और धर्मराज आये और उन्होंने राजा को समझा-बुझा कर देव-लोक के सुखों के भोगने के लिए चलने को कहा, पर राजा उन दुखियों को छोड़कर स्वर्ग में जाने के लिए तैयार न हुए। तब इन्द्र और धर्मराज ने कहा—'सभी को अपने कर्मों को भोगना ही पड़ता है इन प्राणियों ने जो जघन्य कर्म किये थे उनके फल इन्हें नरकों में भोगने पड़ रहे हैं, भोगने से ही वे क्षीण होंगे। आपने शुभ कर्म किये हैं, आप स्वर्ग में चलकर सुखों को भोगें।' राजा ने शुभ कर्मों का लेखा पूछा। धर्मराज बोले—'जिस प्रकार समुद्र के जल-कण, आकाश के तारागण, गंगा के बालु-कण असंख्य हैं उसी

प्रकार आपके शुभ कर्म असंख्य हैं। अभी-आपने यहाँ रुक कर जो सुख इन नरकवालों को दिये हैं उसके कारण आप के लाख पुण्यों का भोग हो चुका। अब आप इनका पचड़ा छोड़ कर स्वर्ग-सुख भोगने के लिये चलिए और इन्हें अपना-अपना कर्म-फल भोगने दीजिये।

राजा बोले-'मेरे जो भी पुण्य फल शेष हों उन्हें मैं नरक में पड़े हुए इन प्राणियों की यातनाओं को दूर करने के लिए दिये देता हूँ। मैं स्वर्ग-सुख नहीं चाहता।'

राजा की विजय हुई। विष्णु भगवान ने स्वयं आकर वहाँ के सब जीवों को नरक से मुक्ति देदी और वे राजा को अपने साथ दिव्य लोक में लेगये। पुण्य का ऐसा अलौकिक प्रभाव है।'

अध्याय १६

पतिव्रता का सूर्योदय को रोकना; पातिव्रत माहात्म्य; ब्रह्मा-विष्णु-शिव का अत्रि के यहाँ जन्म लेना

पिता ने कहा-'हे तात! तुमने संसार की व्यवस्था बतलाई। ऐसी दशा में मुझे अब क्या करना चाहिए, यह बतलाओ।'

पुत्र ने उत्तर दिया-'हे पिता! यदि आप कल्याण

चाहते हैं तो अब घर-गृहस्थी का मोह छोड़कर वानप्रस्था-श्रम को ग्रहण कीजिये और एकान्त में रहकर आत्म-चिन्तन में मन लगाइये, एवं अपनी इन्द्रियों को वश में कर योगाभ्यास द्वारा मोक्ष प्राप्त कीजिये। इसी से आपको जन्म-मरण के कष्ट से छुटकारा मिलेगा और फिर आवा-गमन के चक्कर में न पड़ना पड़ेगा।'

पिता-'अविद्यारूपी काले साँप ने मुझे डसा है, अपने अमृतरूपी ज्ञान से मेरी रक्षा कीजिये। मैं मोह-ममता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ, आप मोक्ष-ज्ञान का वर्णन कर मुझे उससे मुक्त कीजिए।'

पुत्र ने कहा-'प्राचीनकाल में भगवान दत्तात्रेयजी ने अलर्क को जिस ज्ञान का उपदेश दिया था उसी का वर्णन मैं करता हूँ। पूर्वकाल में कौशिक नामक एक ब्राह्मण था। पूर्व जन्म के पापों के कारण उसके शरीर में भयंकर कोढ़ निकल आया। उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। वह देवता की तरह अपने पति की पूजा करती थी। उसके शरीर से बहने वाले रुधिर, पीप आदि को धोकर घावों में दवा लगाती; उसके मल-मूत्र आदि को साफ करती; मधुर-कोमल वाणी से एवम् सेवा-शुश्रूषा से उसे सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करती। इतने पर भी उसका पति उसे मारता पीटता और कड़े वचन कहता। पर स्त्री इसका

विचार न कर वह भक्तिभाव से उसकी सेवा-पूजा करती रहती। एकबार कौशिक ने एक वेश्या को देखा। वह उसके ऊपर मुग्ध हो गया। उसने अपनी स्त्री से कहा कि तू मुझे उस वेश्या के पास ले चल नहीं तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। पति को सन्तुष्ट करने के लिए स्त्री ने उसे अपने कन्धे पर बैठालकर रात्रि के समय वेश्या के यहाँ पहुँचाया। रास्ते में माण्डव्य नामक ऋषि शूली पर टँगे हुए थे। उन्हें धोखे से चोरी के अपराध में दण्ड दिया गया था। वे शूली पर टँगे हुए तड़प रहे थे। अन्धकार के कारण कुछ सूझ न पड़ता था। कौशिक के पैर का धक्का जोर से ऋषि के लगा। इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने शाप दिया कि जिसने मुझे यह कष्ट दिया है वह सूर्योदय के पहले नष्ट हो जाय। इस भयंकर शाप को सुनकर पतिव्रता काँप उठी। उसने पातिव्रत धर्म के बल पर सूर्य को उदय होने से रोक दिया। सूर्य के न उदय होने से सब शुभ कार्य बन्द हो गये। यज्ञ, हवन न होने के कारण देवता भी बहुत व्याकुल हुए। विश्व को संकट में पड़ा हुआ देख ब्रह्माजी ने देवगण से कहा कि आप लोग जगत के कल्याण के लिए अत्रि ऋषि की महापतिव्रता पत्नी अनुसूयाजी को प्रसन्नकर सूर्योदय की व्यवस्था कीजिए, वे ही उस पतिव्रता को समझाकर जगत का

कल्याण कर सकती हैं। देवगण ने जाकर अनुसूया जी को प्रसन्न किया। अनुसूया जी ने पूछा कि आप लोग क्या चाहते हैं? देवगण ने अपने आने का अभिप्राय बतलाया। अनुसूयाजी ने कहा कि पातिव्रत धर्म का माहात्म्य किसी तरह झूठा नहीं हो सकता। इस कारण उस पतिव्रता ब्राह्मणी का सम्मान कराकर उससे क्षमा करा दूँगी और ऐसी व्यवस्था कर दूँगी कि सूर्योदय तो होने लगे किन्तु उसके पति का भी नाश न हो।'

देवगण अनुसूया जी को लेकर पतिव्रता ब्राह्मणी के पास गए। अनुसूयाजी ने ब्राह्मणी का सम्मान करते हुए कहा—'स्त्री के लिए पातिव्रत धर्म से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। पातिव्रत धर्म के पालन करने से उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; सभी धर्मों के फल उसे अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि किये बिना ही उसे अपने पति के किये हुए सभी शुभ कर्मों का आधा फल अनायास ही प्राप्त हो जाता है। केवल पातिव्रत धर्म के कारण ही स्त्री को दिव्य और अक्षय लोक अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।'

ब्राह्मणी ने अनुसूयाजी का बड़ा आदर-सत्कार किया और श्रद्धापूर्वक कहा—'इस लोक और परलोक में स्त्रियों की गति पति में ही है। यह समझकर ही मैं अनन्य भाव

से अपने पति की सेवा कर रही हूँ। मेरा अहोभाग्य है कि आपकी ऐसी पतिव्रता ने आकर मुझे अपने दर्शन और उपदेश देकर मुझे कृतार्थ किया। अब आप अपने आने का कारण बतलायें।'

अनुसूयाजी ने आदि से अन्त तक सब बातें बतलाकर प्रेम पूर्वक कहा—'तुम्हारे पातिव्रत धर्म के प्रभाव से सूर्योदय होना बन्द हो गया है, इस कारण संसार के सभी कार्य रुक गये हैं। और संसार तथा देवगण घोर संकट में पड़ गये हैं। साध्वी स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने प्रभावसे सब का कल्याण करती रहे। तुम्हें उचित है कि जगत के कल्याण के लिए तुम सूर्योदय होने दो, क्योंकि तुम्हारी आज्ञा के बिना सूर्योदय नहीं हो सकता और न जगत का संकट ही दूर हो सकता है'

ब्राह्मणी ने कहा कि माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण सूर्योदय होते ही मेरे पति का नाश हो जायगा। अनुसूया जी ने कहा कि तुम चिन्ता न करो। मैं अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से तुम्हारे पति को नीरोग और जीवित कर दूँगी। अनुसूयाजी की बात मान कर ब्राह्मणी ने विधिपूर्वक हवन करने के अनन्तर सूर्य भगवान को अर्घ्य दिया। उसके अर्घ्य देते ही सूर्योदय हो गया और जगत का संकट दूर हो गया। उधर उस स्त्री का पति प्राण

रहित होकर गिर पड़ा। ब्राह्मणी ने उसे आदर और प्रेम से अपनी गोद में उठा लिया। अनुसूया जी ने यह कह कर उसे जिला दिया कि यदि मनसा, वाचा, कर्मणा एकान्त भाव से मैंने केवल पति की ही आराधना की हो और पति से बढ़कर किसी को न समझा हो एवम् संसार के किसी पुरुष को पुरुष रूप से न देखा हो तो इस पतिव्रता ब्राह्मणी का पति जीवित, स्वस्थ और युवा हो जाय। अनुसूयाजी के प्रभाव से ब्राह्मण दिव्य रूप धारण कर जीवित होगया। उसके देवताओं के-से दिव्य और युवा शरीर को देख कर सब बहुत प्रसन्न हुए। देवगण ने पुष्प-वृष्टि कर अनुसूया जी की स्तुति की और कहा कि आपने संसार का संकट दूर कर देवगण का कार्य साधन किया है, इस कारण आप हमसे वर माँगें। अनुसूया जी ने कहा कि यदि ब्रह्मा जी और देवगण मुझ से प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं यह वर माँगती हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव मेरे पुत्र होकर अवतार लें और मैं अपने पति सहित योग के द्वारा परम पद को प्राप्त होऊँ। देवगण ने अनुसूया जी को मन चाहा वर देकर अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान किया।

यथासमय महर्षि अत्रि के अंश से ब्रह्मा जी चन्द्रमा के रूप, में विष्णु भगवान दत्तात्रेय के रूप में, और शिव जी

दुर्वासा के रूप में अनुसूया के गर्भ से प्रकट हुए। महर्षि अत्रि ने उनके यथा-योग्य संस्कार किये और चन्द्रमा को ब्राह्मणों एवं औषधियों का राजा बना कर प्रजापति के पद पर प्रतिष्ठित किया। दुर्वासा जी जिस समय गर्भ में आये उसके सात दिन बाद ही कार्तवीर्य ने उनकी माता को बहुत भय दिखाया, इस कारण दुर्वासा जी क्रोध कर अपनी माता की रक्षा के लिए बाहर चले आये और तभी से वे उग्र रूप धारण कर दुष्टों को दण्ड देते हुए संसार में विचरने लगे। चन्द्रमा अपनी अमृत मय शीतल किरणों से औषधियों एवम् संसार का कल्याण करते हुए जगत का शासन करने लगे। विष्णु के अवतार दत्तात्रेय जी अपने प्रभाव और उपदेशों से दुष्टों का संहार और धर्म की स्थापना करते हुए जगत का कल्याण करने लगे। उनके मधुर स्वभाव और दिव्य तेज के कारण अनेक ऋषि कुमार सदा उन्हें घेरे रहते थे। उनसे अपना पीछा छुड़ाने के लिए एक बार तालाब में स्नान करते समय वे जल में छिपकर बैठ गए। किन्तु प्रेम और श्रद्धा के कारण उनके साथी ऋषिकुमार उनकी प्रतीक्षा करते हुए किनारे पर बैठे रह गए। बहुत काल व्यतीत होने पर दत्तात्रेयजी को प्रकट होना पड़ा, किन्तु वे एक सुन्दरी स्त्री को अपने साथ लेकर प्रकट हुए। इतने पर

भी ऋषिकुमारों की श्रद्धा और भक्ति कम न हुई। तब दत्तात्रेयजी उस स्त्री के साथ नृत्य, रास आदि में प्रवृत्त हुए। इतने पर भी ऋषिकुमारों की श्रद्धा दूर न हुई। तब दत्तात्रेयजी ने उस स्त्री के साथ मद्य-पान और विहार करना प्रारम्भ किया। उनके इस आचरण को देखकर ऋषिकुमार उन्हें छोड़कर चले गये। किन्तु योगीश्वर होने के कारण मद्य-पान और स्त्री-संग से भी उन्हें कोई दूषण न लग सका। योग का ऐसा ही प्रभाव है। संसार को भ्रम में डालकर योग का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए दत्तात्रेयजी उस स्त्री के साथ भीषण तप करने लगे।'

अध्याय १८-१९

राज्य से नरक; देवगण एवं कार्तवीर्य अर्जुन का दत्तात्रेय को प्रसन्न कर ऐश्वर्य प्राप्त करना; लक्ष्मी जी के वास के आठ स्थानों के फल

सुमति बोले—'बहुत समय राज्य करने के बाद महाराज कृतवीर्य स्वर्गवासी हुए। मंत्रियों, पुरोहितों, और प्रजाजन ने कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन को राजगद्दी पर बैठालना चाहा। अर्जुन ने सबको सम्बोधित कर कहा—'मैं राज्य नहीं करना चाहता, क्योंकि राज्य करते समय कर्तव्य पालन में त्रुटि होना स्वाभाविक है। इस कारण राज्य से नरक में जाना पड़ता है। व्यापार करनेवाले अपनी आय का

बारहवाँ हिस्सा और खेती व गो-पालन करने वाले छठवाँ हिस्सा करके रूप में राजा को देते हैं। इस प्रकार राजा की जीविका वृत्यन्तरवृत्ति कही जाती है। जो राजा कर लेने के बाद भी अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता उसे महान पाप लगता है और घोर नरक में जाना पड़ता है। जिससे नरक जाना पड़े ऐसे काम को मैं नहीं करना चाहता। मैं तो योग के द्वारा अलौकिक सिद्धि प्राप्त करना चाहता हूँ।'

जब मंत्रियों, पुरोहितों और प्रजाजन ने उसे बहुत समझाया तब उसने कहा कि यदि मुझे यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त होजाएँ और मैं सुख-पूर्वक समस्त पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य करते हुए प्रजा की सब तरह से रक्षा कर सकूँ और अपने कर्तव्य से च्युत न होऊँ तो मैं राज्य करना स्वीकार करसकता हूँ। उसकी बात सुनकर गर्गजी बोले—'यदि तुम इस प्रकार का निष्कंटक चक्रवर्ती राज्य करते हुए धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करना चाहते हो तो विष्णु भगवान के अंश, जगत का पालन करने वाले श्रीदत्तात्रेयजी की आराधना करो। वे दुष्टों का संहार कर तीनों लोकों का पालन और धर्म की संस्थापना कर रहे हैं। संसार को भ्रम में डालने के लिए सुरा और सुन्दरी का सेवन करते हुए एक ढोंगी में रहते हैं। पूर्वकाल में जम्भ की अध्यक्षता में दैत्यों ने इन्द्रादि देवगण को हराकर स्वर्ग और यज्ञ

भाग्य से वंचित कर दिया था। शक्तिहीन, क्षीण और दुःखी होकर देवगण ने बृहस्पतिजी के समझाने से ऊपर से कुत्सित-आचरण करने वाले दत्तात्रेयजी की सेवा बड़ी भक्ति-श्रद्धा से करनी आरम्भ की। दत्तात्रेयजी सुरा और सुन्दरी का सेवन करते हुए देवगण की सेवा स्वीकार करने लगे। कुछ समय बीतने पर उन्होंने देवगण से कहा कि आप लोग मेरे ऐसे उन्मत्त व्यक्ति की इस प्रकार भक्ति-भाव से सेवा क्यों कर रहे हैं? देवगण ने प्रार्थना की कि आप दैत्यों के संहार का उपाय कर हमारी रक्षा कीजिए। दत्तात्रेयजी ने कहा कि मैं प्रमत्त हूँ सुरा का सेवन करता हूँ और जितेन्द्रियभी नहीं हूँ, आप मुझसे शत्रु के विनाश की इच्छा कैसे करते हैं? देवगण ने विनय पूर्वक कहा कि हे जगन्नाथ! आप निष्पाप और निर्लेप हैं, विद्या के कारण आपका अन्तःकरण शुद्ध है और ज्ञान के कारण आप निर्मल हैं। दत्तात्रेय जी ने कहा कि यह सत्य है कि मेरे पास समदर्शी विद्या है, किन्तु इस स्त्री के कारण मैं उच्छिष्टता को प्राप्त हुआ हूँ। मैं स्त्री के संसर्ग से दूषित हूँ। देवगण ने नम्रतापूर्वक कहा कि ये तो जगत की माता निर्दोष हैं; सूर्य की किरणें द्विज और चाण्डालों पर एक समान पड़ती हैं। अन्त में देवगण पर प्रसन्न होकर दत्तात्रेय जी ने उनसे कहा कि तुम युद्ध के लिए दैत्यों

कोमेरे सामने लाओ, मेरी दृष्टि पड़ते ही उनके बल और तेज क्षीण हो जायँगे एवं वे नष्ट हो जायंगे।

दत्तात्रेय जी के वचन पर विश्वास कर देवगण ने दानवों को युद्ध के लिए ललकारा। अस्त्र-शस्त्र लेकर दानव देवगण पर टूट पड़े। घोर युद्ध के बाद देवगण हार कर भागे और दत्तात्रेय के आश्रम में जाकर उन्होंने शरण ली। देवगण का पीछा करते हुए दैत्य भी उस आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ उन्हें दत्तात्रेय जी की स्त्री के रूप में लक्ष्मी जी के दर्शन हुए। दैत्य उनके अलौकिक रूप-गुण पर इतने मुग्ध होगये कि उन्हें युद्ध और संसार के दूसरे सभी कार्य भूल गये। वे आपस में सलाह कर लक्ष्मी जी को शिविका में चढ़ाकर सरपर लेगये। उनकी मूर्खता देख दत्तात्रेयजी ने देवगण से कहा—'तुम लोग सोच मत करो। शीघ्र ही दैत्यों का नाश होगा और तुम्हें राज्य मिलेगा। वे लोग लक्ष्मीजी को सर पर चढ़ाकर लेगये हैं। सरपर की लक्ष्मी स्थिर नहीं रह सकती; वह जिसके सर पर जाती है उसे नष्ट कर दूसरे के पास चली जाती है। अन्य सात स्थानपर यदि लक्ष्मी का वास होता है, तो वह स्थायी होकर रहती है। यदि लक्ष्मी का वास मनुष्य के पैर पर हो तो उसके घर धन आयेगा, यदि कमर पर हो तो वस्त्र, आभूषण आदि प्राप्त होंगे; यदि गुप्त स्थान पर हो तो

उसे स्त्री की प्राप्ति होगी; यदि गोद में हो तो संतान का लाभ होगा; यदि हृदय में हो तो उसके मनोरथ पूर्ण होंगे; यदि कण्ठ में हो तो स्वजन, बन्धु मित्रों, से मेल-मिलाप होगा; यदि मुख पर हो तो उत्तम वाक्य, कवित्व की सृष्टि करेगी। किन्तु यदि लक्ष्मी का वास मनुष्य के सर पर हो जाय तो वह उसे छोड़ कर दूसरे के पास चली जाती है। राक्षस गण यहाँ से उसे सरपर लेगये हैं, इससे निश्चय ही वह उन्हें त्याग देगी। तुम भय छोड़कर युद्ध करो-'तुम्हारी विजय होगी।'

उनके उपदेश से देवगण ने युद्ध किया। दैत्य हारकर नष्ट होगये। देवगण को स्वर्ग का राज्य प्राप्त हुआ।

गर्ग के उपदेश से कार्तवीर्य अर्जुन भक्तिभाव से दत्तात्रेयजी की सेवा पूजा करने लगे। वे उन्हें माला, चन्दन, उत्तम भोजन, दिव्य पदार्थों से एवं हाथ-पैर दबाकर तथा अन्य प्रकार की छोटी-बड़ी टहल करके प्रसन्न करने लगे। कुछ समय बीतने पर दत्तात्रेयजी ने अनेक बार उनसे वे ही बातें कहीं जो उन्होंने देवगण से कही थीं। उनकी बातें सुनकर अर्जुन ने विनीतभाव से उत्तर दिया-'मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे अपनी माया से मोहित मत कीजिये, ये जगत की माता हैं, ये तो निष्पाप हैं। आप मेरे ऊपर दया करें।'

अन्त में दत्तात्रेयजी ने अर्जुन से कहा—'तुमने अपनी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण अनन्य सेवा से मुझे जीत लिया। तुम वर माँगो। जो प्राणी मुझे सुगन्धित द्रव्य,पुष्प,मिष्ठान्न,मांस, सुरा,संगीत,उत्सव आदि से संतुष्ट करेगा,उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी। मैं तुम्हें पृथ्वी पर सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण करताहूँ। तुम और भी जो इच्छा हो मुझसे माँग लो।'

अर्जुन ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा—'आप कृपा कर मुझे वह ऋद्धि प्रदान कीजिये जिससे मैं राज्य एवं प्रजा का पालन करते हुए भी अधर्म से बचा रहूँ। मेरे अति बलशाली हजार भुजाएँ हों और मेरा सामना कोई न कर सके। मैं तीनों लोकों का राज्य करता हुआ सदा सब की रक्षा करूँ। मेरे राज्य में कभी रोग, शोक, व्याधि, दुष्काल न हों। मैं मनमाना दान देता रहूँ और सदा आपकी भक्ति में रत रहूँ।'

दत्तात्रेयजी ने उसे मन चाहा वर दिया। दत्तात्रेयजी की कृपा से वशिष्ठ आदि ऋषियों ने, वासुकी आदि नागों, सुमेरु आदि पर्वतों ने, तार्क्ष्य आदि पक्षियों ने एवं पृथ्वी के सभी प्राणियों ने कार्तवीर अर्जुन का राज्याभिषेक किया। राजगद्दी पर बैठकर अर्जुन ने घोषणा की कि मुझे छोड़कर कोई दूसरा शस्त्र ग्रहण न करे। वे धर्मपूर्वक सब की विधिवत रक्षा करने और प्रजा को सुख देने लगे।

जिस तिथि को विष्णु भगवान के अवतार दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया था उसी तिथि को वे सदा दत्तात्रेयजी का यज्ञ और उत्सव करने लगे। उन्हीं जगत के पालन, उत्पादन और नाश करनेवाले आदि पुरुष दत्तात्रेयजी की दया से राजा अलर्क को भी योग की प्राप्ति हुई थी।'

अध्याय २०-२५

ऋतध्वज (कुवलयाश्व) और मदालसा की कथा; नागपुत्रों की मित्रता; नागराज अश्वतर का तप द्वारा मृत मदालसा को पुत्री रूप में प्राप्त कर ऋतध्वज को देना।

सुमति (जड़ पुत्र) बोले–'प्राचीन काल में शत्रुजित नामक एक बहुत ही पराक्रमी राजा थे। उनके यज्ञमें स्वयम् देवराज इन्द्र ने प्रकट होकर सोम-पान किया था। राजा शत्रुजित के ऋतध्वज नामक एक बहुत ही सुन्दर, प्रतापी, बुद्धिमान्, गुणवान पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बुद्धि में बृहस्पति, पराक्रम में इन्द्र और रूप में अश्विनी कुमारों के समान था। उसके गुण और स्वभाव पर मोहित होकर अनेक राजकुमार सदा उसे घेरे रहते थे। उन सब के साथ वह शास्त्र-काव्य की चरचा, नृत्य-गान, व्यायाम-अस्त्राभ्यास, क्रीड़ा-कौतुक, विहार-विश्राम, आमोद-प्रमोद में इतने सुख

से समय बिताता था कि किसी को इस बात का पता न लगने पाता था कि कब दिन बीता और कब रात हुई एवम् कब रात बीती और दिन हुआ। नागलोक से नागराज अश्वतर के दो पुत्र पृथ्वीके विभिन्न देशोंमें भ्रमण करते हुए संयोगवश ऋतध्वज के पास आए और उसके शील, स्नेह के पाश में बँधकर मित्रों की तरह उसके साथ रहने एवं आमोद-प्रमोद में सुख से दिन व्यतीत करने लगे। बहुत काल तक ऋतध्वज के साथ रहने के अनन्तर नागकुमारों को विवश होकर अपने पिता के पास नागलोक जाना पड़ा। किन्तु वहाँ उनका मन न लगता था। न तो आत्मोन्नति के लिए वे शास्त्र का चिन्तन करते थे और न किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद में ही भाग लेते थे। उनको इस प्रकार दुःखी देख उनके पिता ने उनसे इसका कारण पूछा। नागकुमारों ने अपने पिता से राजकुमार ऋतध्वज के शील, स्वभाव और गुणों की प्रशंसा कर कहा कि बिना उनके हमें जीवन में कोई भी सुख नहीं जान पड़ता, स्वर्गलोक और नागलोक के भी सारे सुख हमें फीके जान पड़ते हैं।

नागपुत्रों की बात सुनकर उनके पिता ने कहा—'निश्चय ही वह मनुष्य धन्य है जिसकी प्रशंसा उसके पीठ-पीछे भी की जाती है। संसार में शील ही सबसे बढ़कर है, यदि शास्त्र जानने वाला शील से रहित हो तो उससे वह मूर्ख

कहीं उत्तम है जिसमें शील हो। तुम्हारा मित्र शीलवान है, इस कारण वह धन्य है। तुम नाग-लोक के दिव्य रत्नों, पदार्थों आदि को ले जाकर जिस प्रकार हो सके उनका उपकार करो। जो अपने मित्रों का उपकार और शत्रुओं का अपकार नहीं करता उस मनुष्य को धिक्कार है। जो उन्नतिशील होते हैं वे सदा अपने मित्रों का उपकार करते रहते हैं।'

नागकुमारों ने कहा-'उन्हें किसी भी पदार्थ का अभाव नहीं है। हम उन्हें कोई भी पदार्थ देकर उनका उपकार नहीं कर सकते। उन्हीं से दूसरे लोगों की सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। उनके पास वह विज्ञान है जिसके द्वारा उन्हें सभी कुछ सुलभ है और जिसके बल पर वे दूसरों के संदेहों तथा अभावों को दूर करते रहते हैं। उनका हम क्या उपकार कर सकते हैं? केवल एक बात है जिसके द्वारा उनकी सहायता की जा सकती है। पर वह तो प्रायः असंभव ही है। कैसे उसकी पूर्ति होगी यह हम नहीं जानते!'

नागराज ने कहा-'मैं उस कार्य को सुनना चाहता हूँ। भले ही वह असाध्य अथवा कष्ट साध्य हो! जो दृढ़तापूर्वक उद्योग में लगे रहते हैं वे मन चाहे पद को प्राप्त करते और पूजे जाते हैं। अपने मन, चित्त और इन्द्रियों को वश में कर उद्योग में लगे रहने वाले मनुष्यों को स्वर्ग

और इस लोक में कोई भी कार्य असंभव नहीं होता, कोई भी पदार्थ अप्राप्य नहीं होता। यदि चींटी भी चलने लगे तो वह भी हजारों योजन तय कर लेती है और न चलने वाले गरुड़ भी एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। उद्योगशील पुरुष के सामने साध्य, असाध्य कुछ भी नहीं होता। कहाँ ध्रुवलोक और कहाँ यह पृथ्वी तल! उसी अप्राप्य ध्रुवलोक को राजा उत्तानपाद के उद्योगशील पुत्र ने प्राप्त कर लिया।'

नागकुमारों ने कहा—'एक समय राजकुमार के पिता राजा शत्रुजित के पास गालवजी एक उत्तम घोड़ा लेकर गये। राजा ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और आने का कारण पूछा। ऋषि ने कहा कि एक दुष्ट राक्षस मेरे आश्रम में आकर लोगों को सताता और तप एवम् धर्म-कृत्यों में विघ्न डालता है। मैं शाप देकर उसे नष्ट कर सकता हूँ, किन्तु शाप देते ही मेरे इतने दिनों का संचित पुण्य नष्ट हो जायगा, इस कारण क्रोध नहीं करता। एक बार मैं चिन्ता करता हुआ बैठा था, उसी समय आकाश से यह घोड़ा उतरा और उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि आकाश, पाताल, पृथ्वी, समुद्र कहीं भी इस घोड़े की गति रुक नहीं सकती, इस कारण इसका नाम कुवलयाश्व है, इस पर बैठकर राजकुमार ऋतध्वज उस राक्षस का नाश एवं धर्म की रक्षा करेंगे। मैं आकाशवाणी को सुनकर इस

घोड़े को आपके पास लाया हूँ।

राजा ने उत्तम मुहूर्त में राजकुमार को उस घोड़े पर सवार कराया और उसे मुनि के साथ राक्षस से लड़ने के लिए भेज दिया। मुनि के साथ जाकर राजकुमार उनके आश्रम में उनकी रक्षा करते हुए रहने लगे। कुछ समय बाद वह राक्षस मुनियों को सताने के लिए आश्रम में आया और शूकर का रूप धर कर उपद्रव करने लगा राजकुमार घोड़े पर सवार होकर उसके सामने आया। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। अन्त में राजकुमार के बाण से घायल होकर शूकर वहाँ से भागा और एक भयंकर गर्त में विलीन होगया। राजकुमार भी घोड़े पर उसका पीछा करता हुआ उस गर्त में गया। देर तक घोर अन्धकार में राजकुमार घोड़ा फेंकता हुआ चला गया। बहुत देर बाद राजकुमार गर्त के दूसरी ओर एक दूसरे लोक में जाकर निकला। वहाँ खूब प्रकाश था। किन्तु शूकर कहीं न देख पड़ा। सामने ही देवराज इन्द्र के महल की तरह एक बहुत ही सुन्दर सोने का दिव्य महल चमकता जगमगाता देख पड़ा। उसके चारों ओर एक बड़ा भारी नगर था, किन्तु उसमें एक भी मनुष्य नज़र न पड़ा। कुछ समय बाद राजकुमार को एक अत्यन्त सुन्दरी कुमारी महल के पास घूमती हुई देख पड़ी। राजकुमार ने वहाँ का हाल

पूछने के लिए उसे पुकारा। उसकी आवाज सुनते ही वह युवती भाग कर राजमहल के ऊपर चढ़ गई। राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने घोड़े को एक ओर बाँध दिया और महल में घूमने लगा। ऊपर एक बहुत ही सुन्दर कमरे में एक रत्न जटित पलंग पर एक अप्सरा की तरह सुन्दरी कन्या देख पड़ी। राजकुमार को देखकर वह तुरन्त पलंग से उतर कर खड़ी हो गई। कुछ देर तक छिपी हुई नजरों से राजकुमार की ओर देखने के अनन्तर वह मूर्छित होकर एकाएक पृथ्वी पर गिरपड़ी। राजकुमार ने पानी के छींटेदेकर, पंखा डुला कर एवम् और उपचार करके उसकी मूर्छा दूर की। राजकुमारी उठकर बैठ गई। तब राजकुमार ने उससे मूर्छा का कारण पूछा। राजकुमारी का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए संकोच से मुँह नीचा करलिया। उसी समय उसकी सखी वहाँ आगई। राजकुमारी ने धीमे स्वर में अपनी सखी से कुछ कहा। सखी ने मधुर स्वर में राजकुमार से कहना प्रारम्भ किया—'स्वर्ग में विश्वावसु नामक गन्धर्वों के राजा निवास करते हैं। ये उन्हीं की राजपुत्री हैं। मदालसा इनका नाम है। वज्र नामक दानव का पुत्र पाताल केतु अपनी दानवी माया से सबको धोखे में डालकर इन्हें यहाँ हर लाया है और आगामी त्रयोदशी को वह इनसे

विवाह करना चाहता है, किन्तु यह उससे विवाह नहीं करना चाहती। इन्हें दुःखी तथा आत्म-घात करने के लिए उद्धत देख देव-गौ, सुरभि ने इन्हें आत्म-घात करने से रोका और बतलाया कि राक्षस से शीघ्र ही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी, पृथ्वी पर से एक व्यक्ति आकर उस दानव को अपने बाणों से बेधेगा और तुम्हें अपनी रानी बनायेगा। सुरभि के समझाने से इन्होंने धैर्य धारण किया है। मैं विंध्य की बेटी और वीर पुष्करमालिन की पत्नी हूँ। मेरे पति को शुम्भ ने मार डाला है। तभी से मैं अपने परलोक को बनाने के विचार से तीर्थों में भ्रमण करती हुई परोपकार में लगी रहती हूँ। मदालसा को कष्ट में देखकर मैं इन्हें धैर्य देती रहती हूँ। अभी कुछ समय पहले वह दुष्ट पाताल केतु शूकर का रूप धारण किए हुए यहाँ आया था। उसके शरीर में किसी का बाण बिंधा हुआ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में सुरभि ने कहा था उसने उस राक्षस को अपने बाणों से वेधा है और वह किसी समय आकर राजकुमारी मदालसा को अपनी पत्नी बनाने के लिए ले जायगा। इधर दैव्य-योग से आपके देवोपम रूप और गुणों पर मोहित होकर राजकुमारी अपना हृदय आपके चरणों में अर्पण कर चुकी है। इसी कारण ये मूर्छित हुई और इस समय भी चिन्तित हैं।'

राजकुमार ने आदि से अन्त तक सारा वृतांत बतलाया। राजकुमारी और उसकी सखी कुण्डला दोनों बहुत प्रसन्न हुईं। अनेक प्रकार के कथोपकथन के अनन्तर मदालसा और राजकुमार आपस में एक दूसरे के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो गए। कुण्डला ने दोनों से कहा कि विवाह विधिपूर्वक होना चाहिए, नियोग की रीति से नहीं। किन्तु वहाँ शास्त्रोक्त विधि से विवाह करने के कोई साधन न थे। तब कुण्डला ने अपने गुरु तुम्बुरु का स्मरण किया। उन्होंने आकर वेदोक्त विधि से दोनों का विवाह करा दिया। दोनों से विदा होकर तप के लिए जाते हुए कुण्डला ने राजकुमार से कहा—'पति को सदा अपनी स्त्री का भरण-पोषण और रक्षण करना चाहिए। धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि में स्त्री से ही पति को पूर्ण सहायता मिलती है;बिना स्त्री के कोई भी पुरुष धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि नहीं कर सकता। बिना स्त्री के देवता,पितर,बन्धु-बान्धव आदि किसी का भी सत्कार-पूजन पुरुष ठीक से नहीं कर सकता। स्त्री के कारण ही पुरुष को गृहस्थाश्रम में सुख और सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। धर्म,अर्थ,और काम की सिद्धि एवम् सन्तान की प्राप्ति के लिए पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष की सहायता के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। आप लोग अपने-अपने धर्म का पालन करके एक दूसरे को

सुख दीजिए।'

कुमार को नमस्कार कर एवम् मदालसा से मिल-भेंट कर कुण्डला चली गई। राजकुमार मदालसा को अपने साथ घोड़े पर चढ़ाकर अपने राज्य को जाने लगा। इसी समय दैत्यों ने प्रकट होकर उसे चारों ओर से घेर लिया और वे उस पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे। राजकुमार ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र संभाले और देखते-देखते दैत्यों का संहार कर डाला। इसके अनन्तर वह मदालसा को लेकर अपने पिता के पास गया और आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने अपने प्रतापी पुत्र को आदर के साथ गले लगाते हुए कहा—'मैं तुम्हारे ऐसे धर्मरक्षक, परोपकारी, वीर, सुन्दर, गुणवान पुत्र को पाकर कृतार्थ होगया। तुम्हारे कारण हमारे कुल का यश बहुत बढ़ गया। तुमने पाताल में जाकर असुरों का नाश किया, इस कारण तुम इस कुल में सब से श्रेष्ठ हुए। जो अपने पिता एवम् पूर्व-पुरुषों द्वारा उपार्जित किये हुए धन, देश, यश को बढ़ता है वही संसार में श्रेष्ठ माना जाता है। जिसके जन्म से पिता का यश न बढ़े ऐसे अधम पुरुष का न होना ही उत्तम है। जो अपने उत्कृष्ट कर्मों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त करता है वही श्रेष्ठ है, उसी का जन्म लेना सार्थक है।'

राजकुमार ऋतध्वज अपने पिता तथा नगर निवासियों से आदर-सत्कार पाते हुए एवं आनन्द से मदालसा के साथ विहार करते हुए सुख के दिन बिताने लगे। कुछ काल बीतने पर कुमार के पिता ने उन्हें एक बार फिर गालवजी के आश्रम पर धर्म-रक्षा के विचार से भेजा। राजकुमार अपने दिव्य घोड़े पर सवार होकर आश्रम में गए। वहाँ उन्हें एक तपस्वी देख पड़ा। वह उसी राक्षस का भाई था, जिसे राजकुमार नें पहले मारा था। इसका नाम तालकेतु था। तालकेतु अपने भाई का बदला लेने के विचार से मुनि का वेश बनाकर आश्रम के पास रहता था। उसने आडम्बर बनाकर एवम् मीठी-मीठी बातें करके राजकुमार को अपने वश में कर लिया। फिर एकबार उनसे कहा कि मैं वरुण देवता को प्रसन्न करने के लिए एक महान यज्ञ कर रहा हूँ। उससे आपका बड़ा कल्याण होगा। किन्तु ऐसे महान यज्ञ के लिए जिस बड़ी दक्षिणा की आवश्यकता है वह मेरे पास नहीं है। यदि आप अपने आभूषण उतारकर मुझे दे दें तो मैं उस यज्ञ को पूरा कर लूँ। फिर मैं आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा। राजकुमार ने धर्म के लिए अपने आभूषण उतारकर उस कपट-मुनि को दे दिए। कपट-मुनि यह कहकर आभूषण लिए हुए सामने की नदी के जल में घुसकर अदृश्य हो

गया कि मैं वरुण-लोक को जाता हूँ और जब तक मैं न लौटूँ तब तक आप मेरे आश्रम में रहकर इसकी रक्षा कीजिए। कपट-मुनि के चले जाने पर राजकुमार वहीं रहकर उस आश्रम की रक्षा करने लगा। इधर वह दानव जल से निकलकर राजकुमार के पिता के पास गया और आभूषणों को दिखाकर बोला—'मेरे आश्रम के पास तपस्वियों की रक्षा करते हुए राजकुमार एक दुष्ट राक्षस के हाथ से मारे गए हैं। उन्होंने अन्त समय अपने आभूषण देकर मुझे आपके पास भेजा है। वन में तपस्वियों ने विधिवत दाह-कर्म कर दिया है। राजकुमार के लिए आप लोग शोक न करें, क्योंकि धर्म की रक्षा करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए हैं।' यह कहकर और आभूषणों को वहीं पृथ्वी पर छोड़कर कपट-मुनि वहाँ से चला गया। राजा अपने प्रतापी पुत्र का मरण सुनकर मूर्छित होकर गिर पड़े। मदालसा ने अपने पति के आभूषणों को पहचान कर एवम् कपट-मुनि की बातों को सत्य जानकर तुरन्त अपने प्राण छोड़ दिए। राजा को कुछ समय बाद होश आया। अपनी पुत्र-वधू को मरा हुआ देख, उनका दुःख दूना हो गया। किन्तु किसी तरह धैर्य धारण कर उन्होंने उसके शव का अन्तिम संस्कार कराया और राज-धर्म का विचार कर प्रजा-पालन करते हुए शोक से दिन व्यतीत करने लगे।

इधर मदालसा की मृत्यु अपनी आँखों से देखने के बाद कपट-मुनि अपने आश्रम में लौट आया और राजकुमार से कह दिया कि आपके सहयोग से मेरा यज्ञ सफल हुआ, अब आप सुख पूर्वक अपने स्थान को जाइये। उससे विदा होकर राजकुमार अपने नगर में आए। वहाँ उन्हें सभी छोटे-बड़े शोक-संताप में मग्न देख पड़े। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। राजकुमार को देखकर नगर वालों को और उनके पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्त में जब राजकुमार को सब के शोक और मदालसा की मृत्यु का कारण मालूम हुआ तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पहले तो वे मदालसा के वियोग में इतने व्याकुल हुए कि सब कुछ त्यागने के लिए तत्पर होगये, किन्तु फिर अपने पिता के प्रति अपने कर्तव्य को समझकर वे मन से सब प्रकार के भोगों को त्याग कर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए वहीं रहने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि मदालसा को छोड़कर और किसी स्त्री को ग्रहण न करेंगे। तभी से उन्होंने सभी प्रकार के सुखों और भोगों को त्याग दिया है और सदा मन मारे चिन्तित और उदास रहा करते हैं। उनके दुःख से उनके मित्र और सभी सम्बन्धी अत्यन्त दुःखी हैं।'

राजकुमार की कथा सुनकर नागराज अश्वतर बोले—'यदि लोग यह मानकर कि अमुक कार्य हमारी सामर्थ्य

के बाहर है, उसे करने का उद्योग ही छोड़ दें तब तो उद्योग दिन-पर-दिन कम होता चला जायगा। यथार्थ में मनुष्य को सदा पौरुष का भरोसा रखकर कार्य का प्रारंभ कर देना चाहिए,क्योंकि पौरुष एवं दैव दोनों पर ही कार्य की सफलता निर्भर रहती है। पुरुषार्थ को कभी त्यागना न चाहिए। अब मैं तप का आश्रय लेकर तुम्हारे मित्र के कल्याण की चेष्टा करूँगा।'

यह कहकर नागराज अश्वतर हिमालय पर्वत पर गये और तप, स्तुति द्वारा सरस्वती की आराधना करने लगे। उनकी आराधना से विष्णु-जिह्वा सरस्वती प्रसन्न हुईं और प्रकट होकर बोलीं—'हे नागराज कम्बल के भ्राता! तुम मनचाहा वर माँगो।' अश्वतर ने सम्पूर्ण स्वरों और उनके संबन्धनों का ज्ञान माँगा। सरस्वतीजी बोलीं—हे नागराज! तुम अपने भाई कम्बल की तरह ही स्वर-ताल के ज्ञाता हो जाओगे। मेरी कृपा से सात स्वर,सात ग्राम, राग, सात गीत, सात मूर्छना, ४६ ताल, तीन ग्राम, चार पद, तीन लय, तीन यति, आदि तुम्हें पूर्णरूप से प्राप्त हो जायँ। गान विद्या में तुम्हारे सामान कोई न होगा।'

सर्व-जिह्वा सरस्वती नागराज अश्वतर की जिह्वा में प्रवेश कर गईं। सरस्वती से ऐसा दुर्लभ वर प्राप्त कर नागराज ने कैलाश पर्वत पर जाकर शिवजी की अरा-

धना प्रारम्भ की। उनके गायन-वाद्य-नृत्य से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें मन-चाहा वर देना चाहा। नागराज ने हाथ जोड़कर कहा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप वर दें कि राजकुमार ऋतध्वज की मदालसा नामक जो स्त्री मृत्यु को प्राप्त हुई है, वह ठीक अपने पूर्व रूप-गुण-विचार सहित मेरे यहाँ कन्या रूप में प्रकट हो।'

शिवजी ने मुस्कराकर कहा—'ऐसा ही होगा। तुम श्राद्ध के दिन मध्यपिण्ड को श्रद्धा-भक्ति से खालेना। उसके प्रभाव से तुम्हारे मध्यम फण से मदालसा अपने पूर्व रूप-गुण सहित तुम्हारी कन्या होगी।'

शिवजी से वरदान प्राप्त कर अश्वतर अपने नागलोक को चले आये। यथा समय उनके मदालसा ने जन्म लिया। उन्होंने उसे महलों में इस प्रकार छिपा कर रक्खा कि उनको छोड़कर और किसी को भी उसका पता न चला। कुछ समय बीतने पर उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि तुम अपने मित्र राजकुमार ऋतध्वज को यहाँ बुला-लाओ, हम उन्हें देखना चाहते हैं। नागकुमार ऋतध्वज के पास गये और कुछ समय सुख से उनके साथ रहने के अनन्तर उन्होंने राजकुमार से कहा कि आप हमारे घर चलिए। ऋतध्वज ने उनसे कहा कि आप लोग इस प्रकार भेद-भाव की बात न कीजिए, क्यों कि यह घर

भी तो आपका-ही है। नागकुमारों ने कहा कि हम लोग तनिक भी भेद-भाव नहीं रखते। हम लोगों के लिये तो यह लोक (स्थान) और नागलोक एक ही समान हैं। किन्तु हमारे पिताने आपको देखने की इच्छा प्रकट की है, इस लिये हम आप से वहाँ चलने का अनुरोध कर रहे हैं। नागकुमारों की बात सुनकर ऋतध्वज अपने पिता से आज्ञा माँग कर नागलोक को गए। वहाँ नागलोक की दिव्य मूर्तियों और सुन्दर,स्वस्थ, सुखी स्त्री-पुरुषों को देखकर राजकुमार बहुत प्रसन्न हुए। नागकुमार अपने मित्र को राज महल में लेगए। वहाँ रत्नजटित मयूर आसन पर बैठे हुए नागराज अश्वतर को देखकर सबने उन्हें प्रणाम किया। नागराज ने सबको आशीर्वाद देतेहुए कुमार को उठाकर छाती से लगा लिया और अपने समीप सिंहासन पर बैठालकर बोले-'तुम्हारा ही जीवन धन्य है, क्योंकि केवल तुम्हारे गुण, शौर्य, शील आदि की प्रशंसा तुम्हारे पीठ-पीछे भी होती रहती है। गुणियों का जीवन ही प्रशंसनीय है और गुणहीन व्यक्ति जीवित रहकर भी मृतक समान हैं। देव, पितर, विप्र, अभ्यागत, बन्धु-बान्धव, दुःखी, दरिद्री आदि सभी चाहते हैं कि गुणी पुरुष चिरकाल तक जीवित रहे। गुणी पुरुष ही अपने पिता और पूर्व पुरुषों के हृदय में संतोष, विश्वास, और गौरव

के भावों को उत्पन्न करता है। शत्रुओं को सन्ताप देता और सभी का कल्याण करता है। जो अपने गुणों के कारण विपत्ति में पड़े हुए प्राणियों को संकट से उबारता है उसीका जीवन धन्य है।'

नागराज और नागकुमारों ने अनेक प्रकार से राजकुमार का स्वागत-सत्कार किया। स्नान,भोजन,विश्राम,मनोविनोद आदि के अनन्तर नागराज ने राजकुमार से कहा कि आप की जो इच्छा हो मुझसे माँगिए, क्योंकि आप मेरे पुत्र के समान हैं। राजकुमार ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—'भगवन्! आपकी कृपा से संसार का ऐसा कोई भी छोटा-बड़ा पदार्थ नहीं,जो मुझे प्राप्त न हो। मेरे प्रतापवान पिता पृथ्वी पर एक-छत्रराज कर रहे हैं। और उनकी कृपा से मेरी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होती रहती हैं। जिनके पिता जीवित हैं उन्हें मैं बड़ा पुण्यवान मानता हूँ। फिर मैं तो अभी युवा हूँ, और युवा-अवस्था-रूपी धन के सामने और सभी धन तृण के समान तुच्छ हैं। फिर मेरा शरीर नीरोग और बलवान है। मैं अपनी युवावस्था और शारीरिक पराक्रम के बल पर कौन-सा पदार्थ प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अलावा आपके आशीर्वाद को पाकर मेरे लिए अब कौन-सा पदार्थ अप्राप्य रह गया। आप ऐसे देवता के संसर्ग से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, मेरा जीवन सफल हो गया है।'

नागराज ने अनेक प्रकार से समझाकर राजकुमार से वर माँगने के लिए कहा। तब राजकुमार नम्रता पूर्वक बोला—'यदि आप वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दें कि मेरे हृदय से पुण्य-संस्कार कभी नष्ट न हों। स्वर्ण, मणि, रत्न, महल, स्त्रियाँ, अन्न,पान, पुत्र तथा अन्य सभी पदार्थों को मैं पुण्य-रूपी वृक्ष के फल मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि पुण्यवान के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।' नागराज ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी बुद्धि कभी धर्म से अलग न हो। फिर उन्होंने कहा कि तुम हमसे वह वस्तु माँगो जो तुम्हें पृथ्वी पर प्राप्त न हो सके। यह सुनकर राजकुमार भेदभरी दृष्टि से नागकुमारों की ओर देखने लगा। नागकुमारों ने अपने पिता से मदालसा की कथा बताकर कहा कि राजकुमार ने प्रतीज्ञा की है कि मदालसा को छोड़कर किसी दूसरी स्त्री से संबन्ध न होगा। इस कारण आप कुछ ऐसा उपाय कीजिए जिससे इनका यह क्लेश दूर हो जाय। नागराज ने उत्तर दिया कि स्वप्न अथवा शाम्बरी माया के अतिरिक्त यह बात किसी दूसरे ढंग से संभव नहीं हो सकती। राजकुमार ने विरह-प्रेम, लज्जा और संकोच भरे भाव से कहा कि यदि आप माया-मयी मदालसा का भी दर्शन करा दें तो बड़ा अनुग्रह हो। नागराज ने उत्तर दिया कि आपके संतोष के लिए मैं मायामयी मदालसा का

दर्शन करा दूँगा। यह कहकर वे महल में छिपी हुई मदालसा को ले आए। उसे देखकर राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने देखा, रूप-रंग, चाल-ढाल, आदि सभी वही हैं। वे 'प्रिये-प्रिये' कहते हुए आत्म-विस्मृत कीतरह उसकी ओर बढ़े। नागराज ने यह कहकर उन्हें रोका कि यह तो मायामयी मदालसा है, आपका हाथ लगते ही यह अन्तर्धान हो जायगी। यह सुनते ही राजकुमार मूर्छित होकर गिर पड़े। नागराज और नागकुमारों ने उपचार कर उनकी मूर्छा भंग की। राजकुमार का स्नेह अचल और प्रतिज्ञा दृढ़ देखकर नागराज ने अपनी तपस्या और मदालसा की पुनर्जन्म की सारी कथा बतलाकर उनका विवाह उससे कर दिया। राजकुमार मदालसा को लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने पिता के यहाँ लौट आए।'

अध्याय २५-२६

मदालसा का अपने पुत्रों को ज्ञान देकर विरक्त करना

जड़ (सुमति नामक पुत्र) ने कहा—'राजकुमार ने अपने पिता के पास जाकर मदालसा की प्राप्ति का सारा वृतान्त सुना दिया। राजा को और नगरवासियों को एवं प्रजाजन को बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़ा आनन्द-उत्सव मनाया गया। ऋतध्वज मदालसा के साथ वनों, उपवनों आदि में नाना

प्रकार के विहार करने लगे। बहुत काल बीतने पर उनके पिता का स्वर्गवास हुआ। प्रजा के अनुरोध से ऋतध्वज गद्दी पर बैठे और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। कुछ समय बाद उनके पहले पुत्र का जन्म हुआ। ऋतध्वज ने सब की सम्मति से उसका नाम विक्रान्त रक्खा। किन्तु मदालसा ने उसके नाम को सुनकर अट्टहास किया। पहले ही दिन से वह उसे निवृत्ति मार्ग की बातें सुनाने लगी। मदालसा बालक से सदा कहती—'हे पुत्र! तू तो शुद्ध है, तेरा नाम हो क्या हो सकता है? तूने पंच-भौतिक शरीर धारण किया है इस कारण तेरा नाम कल्पित किया गया है। तुम रोते किस लिए हो? किन्तु कहना यह चाहिए कि तुम रोते भी नहीं हो, रोने का शब्द स्वयम् ही उत्पन्न होता है। मनुष्यों का शरीर अन्न-जल पाकर बढ़ता है और उन के न मिलने से घटता है, किन्तु शरीर के घटने-बढ़ने से तुममें कुछ वृद्धि या ह्रास नहीं होता। इस शरीर से ममता करना मूर्खता है, क्योंकि यह शुभाशुभ कर्मों का फल मात्र है। केवल मूर्ख लोग ही अपने-पराये की माया में फँसते हैं, दुःखों और भोगों को सुख मानते हैं। स्त्री का शरीर मांस, रुधिर, मज्जा, हड्डी आदि घृणित और नारकीय पदार्थों से भरा हुआ है। उनसे या अपने शरीर में ममता करना केवल मूर्खता है।'

इस प्रकार के उपदेश देदे कर मदालसा ने अपने पुत्र के हृदय में आत्मबोध प्राप्त करा दिया। राजा ऋतध्वज ने अपने पुत्र को व्यावहारिक ज्ञान का उपदेश देकर उसे राज काज के योग बनाने की बड़ी चेष्टा की, किन्तु मदालसा के उपदेश के आगे राजा का उपदेश कोई प्रभाव न डाल सका। पुत्र सब को त्याग कर तप करने के लिए चला गया। कुछ समय बाद मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम सुबाहु रक्खा। इस बार भी मदालसा खूब हँसी। इस पुत्र को भी उसने उसी प्रकार निवृत्तिमार्ग का उपदेश देना प्रारम्भ किया। अन्त में वह भी विरक्त होकर चला गया। कुछ समय बाद तीसरा पुत्र हुआ। राजा ने उसका नाम शत्रुमर्दन रक्खा। इस बार भी मदालसा हँसी। यह पुत्र भी माता के उपदेश से आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सब को त्याग कर चला गया। कुछ समय बाद चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसके नामकरण का उपक्रम किया, इसी समय उन्होंने देखा मदालसा मुस्कुरा रही है। उन्होंने रानी से कहा कि यदि मेरे रक्खे हुये नाम पसन्द नहीं हैं तो इस पुत्र का नामकरण तुम्हीं करो। मदालसा ने उसका नाम अलर्क रखकर कहा कि इस का यश संसार भर में फैल जायगा और यह बड़ा विद्वान होगा।

अलर्क नाम को असंबद्ध समझ कर ऋतध्वज हँसे और

मदालसा से उसका अर्थ पूछा। उसने नम्रता किन्तु दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया-'पुकारने के लिए कोई भी नाम रख लेना व्यावहारिक बात मानी जाती है। आपने जो तीन नाम रक्खे थे वे सर्वथा निरर्थक थे। पुरुष को विद्वान लोग सर्वव्यापी कहते हैं,देश-देशान्तर में जो गति रक्खे उसे क्राँति कहते है। शरीर का स्वामी ईश्वर सर्वव्यापी होनेके कारण आता-जाता नहीं क्योंकि यदि उसका आना-जान होता रहे तो वह सर्वव्यापी कैसा? इस कारण 'विक्रान्त' नाम सर्वथा निरर्थक है। चूँ कि पुरुष तो अमूर्त माना गया है, इस कारण उसे मूर्तिमान समझ कर उसको 'सुबाहु' कहना नितांत निरर्थक है। फिर जब इस संसार के सभी छोटे-बड़े शरीरों में एक ही परमात्मा व्याप्त है, तो उसका शत्रु कौन हो सकता है? शत्रु के मर्दन की कल्पना भी अर्थहीन ही है। ऐसी दशा में यदि आप के रक्खे हुए नाम सार्थक और व्यावहारिक माने जा सकते हैं,तो 'अलर्क' नाम में कौन दोष है, यह भी उसी प्रकार व्यावहारिक और सार्थक है।'

राजा को मदालसा की बात मान लेनी पड़ी। वह पुत्र को पूर्ववत ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने लगी। यह देख, चिन्तित हो राजा ने कहा-'तुम यदि इसे भी निवृति के मार्ग में लगा दोगी तो यह राज्य कौन चलायेगा? मेरा अनुरोध मानों और इस पुत्र को ऐसा उपदेश दो जिससे

यह प्रवृत्ति मार्ग में अग्रसर हो और देवता, पितर, ऋषि, अभ्यागत, स्वजन आदि की सेवा-पूजा करता हुआ प्रजा का पालन करे।' मदालसा ने अपने पति को प्रसन्न करने के लिए पुत्र को ब्रह्मज्ञान के साथ-ही-साथ गृहस्थाश्रम और राजधर्म का भी उपदेश दिया।

अध्याय २७

मदालसा द्वारा राज-धर्म वर्णन

जड़ (सुमति नामक पुत्र) बोले—'मदालसा से नाना प्रकार की शिक्षा पाकर अलर्क बड़े हुए। यथा समय उनका यज्ञोपवीत किया गया। वेद-शास्त्र का अध्ययन करने के अनन्तर अलर्क ने अपनी माता के पास जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की कि आप मुझे इस लोक और परलोक के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में उपदेश दीजिए।

मदालसा बोली—'राज्याभिषेक होने पर राजा का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्रजा का मनोरंजन करते हुए धर्म पूर्वक उसका पालन करे। और मूल को नाश करने वाले सात व्यसनों से स्वयम् बचे और प्रजा को बचावे। अपने को शत्रुओं से बचाते हुए मंत्रियों के सहयोग से राज्य का संचालन करें। जिस प्रकार सुन्दर पहिये का रथ उत्तम

होता है, उसी प्रकार मंत्रियोंकी सलाह से राजा भी निश्चयही सुरक्षित रहता है। मंत्रियों में दुष्ट और सज्जन की पहिचान रखनी चाहिए, तथा शत्रुओं के मित्रों पर भी यत्नपूर्वक निगाह रखनी चाहिए। राजा को चाहिए कि अपने मित्रों, भाई-बन्धुओं पर भी विश्वास न करे और यदि मौका हो तो शत्रु का भी विश्वास करले। राजा को चाहिए कि छःगुणों के अनुसार रहे तथा स्थान और हानि, लाभ का ज्ञान रक्खे एवं कभी काम के वशीभूत न हो। राजा पहिले अपने आपको, फिर मंत्रियों को, फिर सेवकों को तथा उसके बाद प्रजा को वश में करे और फिर शत्रुओं का नाश करे। जो राजा अपने को, अपने मंत्रिवर्ग को एवम् अपनी प्रजा को वश में किए बिना ही अपने शत्रुओं का नाश करना चाहता है वह मूढ़ स्वयम् ही शत्रुओं द्वारा नष्ट हो जाता है। क्योंकि जो अपने व्यसनों से छुटकारा नहीं पा सकता, जो अपने मंत्रियों और सेवकों के अधीन रहता है; और अपनी प्रजा को अपने वशीभूत नहीं कर सकता वह अपने शत्रुओं का सामना कैसे कर सकता है। इस कारण राजा को चाहिए कि सबसे पहले व्यसनों से मुक्ति पाकर अपने आप को जीते, इसके अनन्तर अपने सेवकों और मंत्रियों को जीत कर अपने वश में करे और उनका सहयोग प्राप्त करे। फिर उनकी सहायता से अपनी प्रजा और सेना को अपनी

मुट्ठी में करे और इस प्रकार प्रबल शक्ति प्राप्त कर शत्रुओं को नष्ट करे। काम,क्रोध,लोभ,मद,मान,हर्ष ये राजा के सब से प्रबल शत्रु हैं;इन्हें बिना जीते कोई भी राजा न तो खुद बच ही सकता है और न उन्नति ही कर सकता है। असल में इन्हीं शत्रुओं के कारण राजाओं का नाश होता है। काम के कारण राजा पाण्डु का पतन हुआ; क्रोध के कारण अनुसाद का पुत्र मारा गया; लोभ के कारण पुरुरवा का नाश हुआ; मद के कारण राजा बेणु का नाश ब्राह्मणों के द्वारा हुआ; मान के कारण अनायुष का पुत्र बलि और हर्ष के कारण पुरंजय का विनाश हुआ। और इन काम, क्रोध,लोभ आदि आन्तरिक शत्रुओं को जीत लेने के कारण महराज मरुत ने संसार में सब पर विजय प्राप्त की। राजा को कौआ, कोकिल,भृंग,मृग,व्याल,मोर,हंस, मुर्गा, लोहा, वन्ध की स्त्री, कमल, पतंग आदि से शिक्षा लेनी चाहिए। राजा को विपत्तिओं से कीट की तरह काम निकाल लेना चाहिए और अपनी चेष्टा चींटी की तरह रखनी चाहिए। अपनी उन्नति और वृद्धि के लिए राजा को सदा सचेष्ट रहना चाहिए। प्रजा का पालन करते समय राजा को इन्द्र, सूर्य, यम,चन्द्रमा और वायु के गुण ग्रहण करने चाहिए। इन्द्र चार मास वर्षा करके संसार को संतुष्ट करते हैं, उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा के अन्न-वस्त्र का प्रबंध कर

उसका पालन करना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य आठ महीने बराबर पृथ्वी के विभिन्न भागों से जल के कणों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार राजा को प्रजा से सूक्ष्म उपायों द्वारा कर एकत्र करना चाहिए। जिस प्रकार अन्त समय यमराज सब के भले-बुरे कर्मों का विचार कर उसे उचित फल देते हैं, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा के प्रत्येक प्राणी के भले-बुरे कार्यों का निष्पक्ष होकर विचार करे और उचित दण्ड एवं पुरस्कार की व्यवस्था रक्खे, सज्जन के प्रति उत्तम और दुष्ट के प्रति कठोर व्यवहार करे। जिस प्रकार सभी प्राणी पूर्ण चन्द्रमा को देख कर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार राजा अपने कार्यों द्वारा सभी प्रजाजन की प्रीति का भाजन बने; उसे अपने कार्यों द्वारा प्रजा को सुखी करना चाहिए। जिस प्रकार वायु गुप्त रूप से सभी के बीच में व्याप्त है, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त-चरों, द्वारा सब में घुस कर सब के भेदों को प्राप्त करता रहे। राजा जैसे भी हो धर्म की स्थापना और रक्षा करता रहे। प्रजा की रक्षा, पालन और उसकी समृद्धि करते रहकर ही राजा सुखी रह सकता है और धर्म तथा स्वर्ग का भागी होता है। प्रजा को सुखी रखने से ही राजा इस लोक और परलोक में पूजा जाता है।

अध्याय २८-२९

वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन

जड़ (सुमति नामक पुत्र) बोले—'अलर्क ने अपनी माता से वर्णाश्रमधर्म के सम्बन्ध में पूछा।

मदालसा ने कहा—'दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के ये तीन धर्म हैं। यज्ञ कराना, पढ़ाना, और पवित्र दान लेना यह तीन प्रकार की जीविका ब्राह्मण की है। पृथ्वी की रक्षा और शस्त्र से जीवन निर्वाह करना ही क्षत्रिय की जीविका है। वाणिज्य और पशुपालन एवं कृषि वैश्य की जीविका है। दान और यज्ञ करना एवम् द्विजातियों की सेवा यही शूद्रों के धर्म हैं। शिल्पकर्म, सेवा, खरीदना-बेचना यह शूद्र की जीविका है। मनुष्य को अपने-अपने धर्म से ही सिद्धि और कल्याण की प्राप्ति होती है। उपनयन के अनन्तर द्विजातियों को गुरू के यहाँ रहकर यम-नियम का पालन करते हुए स्वाध्याय और अग्निहोत्र करना चाहिए, एवम् भिक्षा से प्राप्त अन्न को गुरु के अर्पण करना चाहिए। इसमें से जितना अन्न वे दें उतने में ही संतुष्ट रहना चाहिए। अध्ययन समाप्त करने के अनन्तर गुरु-दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। अपने गोत्र से भिन्न गोत्र की नीरोग,

स्त्रियोचित गुणों से युक्त,उपयुक्त कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और विधिपूर्वक धनोपार्जन कर देवता, पितर, अतिथि की पूजा करता हुआ अपने आश्रितों का पालन-पोषण करे। ऋतुकाल में पत्नी के पास जाना परमावश्यक है। गृहस्थ पंच महायज्ञों को कभी न छोड़े।

'गृहस्थाश्रम से ही दूसरे आश्रमों का पोषण होता है, इस कारण गृहस्थाश्रम अन्य आश्रमों के लिएमाता के समान है। देवता, पितर, ऋषि, मुनि, वानप्रस्थ, संन्यासी, भूत-प्रेत, असुर, गन्धर्व, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आदि सभी गृहस्थाश्रम के ऊपर निर्भर रहते हैं। वेदों का मत है कि गृहस्थाश्रम ही सब का आधारभूत और कामधेनु के समान है। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार ही इस गृहस्थाश्रम रूपी कामधेनु के दूध देनेवाले स्तन हैं, जिनसे देवता, पितर आदि सब की तृप्ति होती है। स्वाहाकार स्तन को देवता, स्वधाकार को पितर, वषट्कार को ऋषि-मुनि, एवम् हन्तकार को मनुष्य आदि प्राणी पीकर अपनी पुष्टि करते हैं। जो गृहस्थाश्रम रूपी इस काम-धेनु का विधिपूर्वक निर्वाह और पालन करते हैं, उन्हें सुख-शान्ति, स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। एवम् जो इसकी उपेक्षा, अवहेलना करते हैं,उन्हें इसलोक और परलोक में कहीं भी शान्ति एवम् सद्गति प्राप्त नहीं

होती। गृहस्थ को चाहिए कि स्नान आदि से पवित्र होकर पूजन, आराधना के अनन्तर विधिपूर्वक देवता, पितर आदि को बलि देवे, एवम् अतिथि, अभ्यागत, ब्राह्मण, संकटापन्न व्यक्ति आदि को भोजन करावे। फिर स्वजनों के साथ भोजन करे और अपने आश्रितों का भरण-पोषण करे।'

'गृहस्थाश्रम का पालन करते-करते जब मनुष्य के पुत्र आदि सम्पन्न हो जायँ तब वह वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करे। वानप्रस्थ-आश्रम में मनुष्य को नित्यप्रति तीन बार स्नान-हवन, ब्रह्मचर्य-पालन, जटा-वल्कल धारण, पृथ्वी-शयन एवम् इन्द्रिय-दमन करना चाहिए। योगाभ्यास द्वारा जब मनुष्य अपनी वृतियों को शान्त कर ले तब संन्यास ग्रहण करे। संन्यास आश्रम में विषयों का त्याग, ब्रह्मचर्य, क्रोध का दमन, जितेन्द्रियता, परिभ्रमण, (एक स्थान पर बहुत समय तक न रहना) भिक्षा द्वारा मिले हुए अन्न को एकबार ग्रहण करना, एवम् आत्म-चिन्तन में निरन्तर लीन रहना परम आवश्यक है।

'ऊपर प्रत्येक आश्रम के धर्म एवं कर्त्तव्य पृथक-पृथक बतलाये गये हैं। कुछ ऐसे धर्म हैं जिनका पालन चारों आश्रम वालों को समान रूप से करना चाहिए। सत्य, पवित्रता, अहिंसा, डाह न करना, क्षमा, अक्रूरता, उदारता, संतोष, ये आठ ऐसे धर्म हैं जिनका पालन सभी आश्रम

वालों को करना चाहिए। जो अपने वर्ण एवं आश्रम के धर्म को पालन नहीं करता उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। राजा को चाहिए कि ऐसे व्यक्ति को कठोर दण्ड देकर धर्म की स्थापना करे।'

'सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम विशिष्ठ है। महर्षि अत्रि का कथन है कि गृहस्थ दूसरे आश्रमवालों का एवं देवता, पितर, पशु,पक्षी, आश्रितवर्ग आदि का पालन करता हुआ अक्षय पुण्य का भागी होता है।'

—:o:—

अध्याय ३०-३३

नित्य, नैमित्यिक कर्म, श्राद्ध और उसकी विधि

मदालसा ने कहा—'गृहस्थ के नित्य, नैमित्यिक, नित्य-नैमितिक,एवं त्रिविधात्मक कर्म हैं। पंचयज्ञ आदि जो कर्म प्रतिदिन किये जाने चाहिए उन्हें नित्य-कर्म कहते हैं। पुत्र-जन्म आदि के सम्बन्ध में जो समय-समय पर कार्य करने आवश्यक होते हैं उन्हें नैमित्यिक कहते हैं। पर्व, श्राद्ध आदि नित्य-नैमित्तिक कर्म कहे जाते हैं। पुत्र-जन्म के अवसर पर जातकर्म, नान्दीमुख-श्राद्ध करे एवं पितरों को दधि और यव मिले हुए पिण्ड दे। जिस दिन जिसकी मृत्यु हो उस दिन उसकी श्राद्ध की जाती है। इसे एको-

द्दिष्ट श्राद्ध कहते हैं। उस दिन देवपूजन, अग्निकरण, आवाहन आदि नहीं किये जाते। इस प्रकार बराबर एक वर्ष व्यतीत होने पर सपिन्डीकरण करे। स्त्री का भी एकोद्दिष्ट एवं सपिंडीकरण करना चाहिए।'

श्राद्ध के लिए शुक्ल पक्ष की अपेक्षा कृष्ण पक्ष, दोपहर के पहले की अपेक्षा दोपहर के बाद का समय अधिक उपयुक्त माने गए हैं। देव-कार्य में सम और श्राद्ध में विषम संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। देवताओं के लिए पूर्व मुख और पितरों के लिए उत्तर मुख संकल्प करना चाहिये। विधिपूर्वक पूजन-तर्पण के अनन्तर काव्य वाहाय-स्वाहा, सोमायवै पितृ-मते स्वाहा, यमायप्रेतपतयैस्वाहा, इन मंत्रों से अग्नि में आहुति देना चाहिए। आहुति से बचे हुए अन्न को ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए। रक्षोघ्न मंत्र से तिलों को पृथ्वी पर बिखेर दे और कुछ अन्न चारों तरफ छोड़ दे। तर्जनी अँगुली और अँगूठे के बीच में होकर पितरोंको जलदान करना चाहिए। भोजन के अनन्तर ब्राह्मणों को स्वधा कह कर दक्षिणा देना चाहिए। पितरों की तृप्ति के लिए प्रति दिन भी तर्पण आदि करना आवश्यक है। श्राद्ध के लिए उत्तम विप्र, योगी, वेदज्ञ,श्रेष्ठ पुरुष, नाती, जमाई, पुरोहित, शिष्य को बुलाना श्रेयकर होता है। एक कर्म-निष्ठ योगी श्राद्ध के लिए एक हजार ब्राह्मणों से अधिक श्रेष्ठ माना

गया है। प्रायश्चित करने वाला, रोगी, अंगहीन अधिक-अंग वाला, काना, दोगला, मित्र-द्रोही, खराब-नख-वाला, नपुंसक, काले दाँतों वाला, कुरूप, पतित, वैद्य, दासों को पढ़ाने वाला, पर-स्त्री-गामी, वेदों को न माननेवाला ब्राह्मण श्राद्ध के लिए वर्जित है। मक्का, उड़द, मसूर, नमक, लहसुन, प्याज, मूली, रंगीन वस्त्र, दूषित स्थान का जल; मृगी, बकरी, उँटनी, तत्काल बच्चा देने वाली गौ का दूध, एवं श्राद्ध के नाम से माँगा हुआ दूध; जानवरों से भरी, रूखी, अग्नि से जली हुई पृथ्वी; अनिष्ट वस्तु, दुष्ट-शब्द; दुर्गन्धि अथवा कृमि-कीटों से भरा हुआ स्थान; मुर्ग, सुअर, कुत्ता, रजस्वला-स्त्री, पतित, सूतक में पड़ा हुआ व्यक्ति, संन्यासी, नीच दासी, कपड़े की हवा से सुखाई गई वस्तु, यह सब श्राद्ध कर्म में वर्जित हैं। श्राद्ध के समय क्रोध करना, मार्ग चलना और जल्दबाजी करना अत्यन्त वर्जित हैं। श्राद्ध के लिए चाँदी और चाँदी के पात्र बहुत ही उत्तम माने गए हैं।

'विभिन्न पदार्थों से पितरों को विभिन्न काल तक तृप्ति प्राप्त होती है। हविष्यान्न से एक महीने; मछली से दो महीने; हिरण के मांस से पाँच महीने; शूकर के मांस से छः महीने; बकरे के मांस से सात महीने बारहसिंघे के मांस से आठ महीने; चित्रांग के मांस से नौ महीने; गवय के मांस से दस महीने; उरभ्र के मांस से ग्यारह महीने और खीर से बारह महीने और

खीर से बारह महीने के लिए पितरों को तृप्ति प्राप्त होती है। श्राद्ध से तृप्त होकर पितृगण आयु, बुद्धि, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख-शान्ति प्रदान करते हैं। विभिन्न नक्षत्रों और तिथियों में श्राद्ध करने से मनुष्य को विभिन्न प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तत्वों के जानने वाले विधिपूर्वक विभिन्न तिथियों और नक्षत्रों में विभिन्न पदार्थों द्वारा श्राद्ध कर पितरों को प्रसन्न करके मन चाहा फल प्राप्त करते हैं।'

अध्याय ३४-३६

मदालसा द्वारा सदाचार का उपदेश, अलर्क को राज्य

मदालसा ने कहा-'गृहस्थ को देवता, पितर, भूत-प्रेत, पशु-पक्षी, अतिथि अभ्यागत, भिखारी-याचक, बन्धु-बान्धव, आश्रित-सेवक आदि को अन्न आदि से संतुष्ट करते रहना चाहिए। जो गृहस्थ नित्य-नैमित्यिक क्रियाओंका उलङ्घन कर के भोजन करता है, वह पाप का भागी होता है। गृहस्थ के लिए सदा-चारी होना सब से अधिक आवश्यक है। आचार-विहीन होने पर गृहस्थ को न इस लोक में सुख मिलता है, न पर लोक में। सदाचार के बिना यज्ञ, दान, तप आदि किसी का भी फल नहीं मिलता। आचार के बिना उत्तम आयु और सुख की प्राप्ति भी नहीं होती।

सदाचार के बल पर मनुष्य अपने कुलक्षणों से भी त्राण पा जाता है। गृहस्थ को अपनी आय के आधे भाग से अपना भरण,पोषण करना चाहिए,चौथाई भाग से परलोक को सुधारना चाहिए और बचे हुए भाग से भविष्य के लिए सुरक्षित कोष स्थापित करना चाहिए। धन को इस प्रकार बाँट कर काम में लाने से ही मनुष्य का कल्याण होता है। काम, क्रोध आदि को वश में करके ही मनुष्य इस संसार में सफल हो सकता है। कुछ कार्य भय के कारण और कुछ कार्य विरोध को दूर करने के लिए किए जाते हैं। धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि के लिए मनुष्य को इन सब बातों का ध्यान रख कर कार्य करना चाहिए। ब्रह्म-मुहूर्त में उठ कर मनुष्य को धर्म, अर्थ का चिन्तन एवम् कार्य में जो कठिनाइयाँ हों उनका वेद-तत्व से विवेचन करना चाहिए। प्रातः सन्ध्या एवं सायं-सन्ध्या; दोनों समय हवन तथा देव-पितृ कार्य परम आवश्यक हैं। स्नान,शृंगार,देव-कार्य आदि दिन के पूर्व भाग में करलेना चाहिए। मिथ्या प्रलाप,असत्य वचन,कुशास्त्र का पाठ,व्यर्थवाद,दुष्टों का साथ सर्वथा त्याग देना चाहिए। जूठे मुँह या अशुद्ध होकर बात-चीत करना, स्वाध्याय, गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने सर को छूना, सूर्य-चन्द्र-तारागण एवम् देवगण तथा गुरू को देखना और शैय्या पर जाना वर्जित है। केवल एक वस्त्र धारण किये हुए भोजन

करना या देवताओं को पूजना वर्जित है। ब्राह्मण, राजा, दुःखी, आतुर, विद्वान, गर्भवती स्त्री, बोझ से लदे हुए व्यक्ति, अन्धा, बहिरा, मतवाला, दुष्टस्त्री, शत्रु, बालक एवम् पतित को सामने से आता हुआ देख उसके लिए रास्ता छोड़ दे। दूसरे के पहिने हुए जूते, वस्त्र, माला, जनेऊ आदि को न पहनना चाहिए। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या एवम् अन्य पर्वों पर तेल लगाना और स्त्री संग करना वर्जित है। बैठकर पाँव या जाँघ हिलाना और पैर-पर-पैर रखना दूषित है। व्यर्थ में किसी की हँसी उड़ना उचित नहीं होता, विशेष कर मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मायावी, अंगहीन का कभी मजाक न उड़ावे। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोना अनुचित है। दुःशील, चोर, फिजूल खर्च करनेवाले, लोभी, दूसरों का अहित करनेवाले, निन्दित पुरुष, कायर एवम् कपटी से कभी मित्रता न करे। जहाँ ऋणदाता, वैद्य, पंडित, जलवाली नदी न हो वहाँ वास न करना चाहिए। जहाँ सज्जन और सुशील पुरुषों का वास हो वहाँ रहने में सुख प्राप्त होता है।

'कल्याण चाहने वाले मनुष्य को शुद्ध वस्तुओं को ग्रहण करना और अशुद्ध वस्तुओं को त्याग करना चाहिए। विभिन्न पदार्थ विभिन्न रीति से शुद्ध किये जा सकते हैं। मृत्यु अथवा जन्म के कारण सम्बन्ध, वर्ण, कालादि के अनु-

सार शुद्ध होने के लिए विभिन्न काल निश्चित किये गये हैं। नित्य वेद-शास्त्र का अध्ययन, ज्ञानियों की संगति एवं धर्माचरण करते रहने से मनुष्य सदा उन्नति करता जाता है। जिन कर्मों के करने से निन्दा न हो और जिन्हें श्रेष्ठ जन करते हों ऐसे ही कर्मों के करने से मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि और इह-लोक एवं परलोक में सुख की प्राप्ति होती है।'

जड़ (सुमति नामक पुत्र) बोले--'अपनी माता से इस प्रकार के उपदेश पाकर अलर्क कृतकृत्य हो गये। युवावस्था प्राप्त होने पर उन्होंने माता-पिता से आज्ञा लेकर एक सुन्दरी राज-कन्या से विवाह किया एवम् गुणी और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। बहुत काल व्यतीत होने पर राजा ऋतध्वज अपने पुत्र अलर्क को राजगद्दी पर बैठालकर तप करने के लिए वन में चले गए। अपने पति के साथ वन जाते हुए मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक सुन्दर सोने की अँगूठी देकर कहा--'इस अँगूठी में एक पत्र है जिस पर मैंने बहुत ही सूक्ष्म अक्षरों में आवश्यक ज्ञानोपदेश अंकित कर दिया है। यदि किसी समय तुम बन्धु-बान्धवों के वियोग से, शत्रु की बाधा से, धन एवं प्रिय-जनों के नाश से अथवा अन्य किसी कारण से अत्यन्त दुःखी हो जाओ तो तुम इस अँगूठी में से उस पत्र को

निकालकर पढ़ना।'

ऋतध्वज और मदालसा के तप के लिए वन में जाने के अनन्तर अलर्क धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।'

अध्याय ३७-३८

अलर्क भोग में आसक्त; काशिराज से पराजय, आत्म-ज्ञान

जड़ (सुमिति) बोले–'अलर्क धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। वे धर्म से धन प्राप्त करते, फिर धन से धर्म की साधना करते और धन एवं धर्म की सिद्धि के अनन्तर सुखोपभोग में लगते। इस प्रकार धर्म, अर्थ काम का साधन करते हुए वे समय बिताने लगे। कुछ काल बाद आनन्द उपभोग में वे पूरी तरह से फँस गए। उनके अनेक वीर, विद्वान, गुणी पुत्र हुए और उन्होंने बहुत काल तक सब प्रकार के सुख भोगे, किन्तु भोगों से और राज्य से उनका मन न भरा। यह देख उनके भाई सुबाहु ने तप करते-करते वन में सोचा कि यदि शीघ्र कोई उपाय न किया गया, तो मेरे भाई अलर्क को मोक्ष की प्राप्ति न हो सकेगी। यह सोचकर वे काशिराज के पास गए और बोले कि मैं अलर्क से बड़ा हूँ, न्यायपूर्वक राज्य तो मुझे मिलना चाहिए। आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा राज्य मुझे मिल जाय।

'काशिराज ने सुबाहु की बात मान कर अलर्क के पास दूत द्वारा कहला भेजा कि तुम अपने बड़े भाई को राज्य देदो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। अलर्क ने कहला भेजा कि यदि मेरे भाई मेरे पास आकर राज्य माँगते तो मैं देदेता, अब दूसरे के भय दिखलाने से मैं राज्य नहीं दूँगा। उत्तर पाकर काशिराज ने अपने वचन को पूरा करने के लिए एक बड़ी सेना लेकर राजा अलर्क पर चढ़ाई करदी। युद्ध में बहुत से वीर मारे गये। फिर काशिराज ने धन, भूमि आदि देकर अलर्क के मंत्री,सामन्त, सेवक, सेना आदि को मिला लिया। फिर क्या था। अलर्क के हाथ से राज्य निकल गया। वे बहुत व्याकुल हुए। उस समय उन्हें अपनी माता मदालसा की दी हुई अँगूठी की याद आई। उन्होंने उसमें से उस लेख को निकालकर पढ़ा। उसमें लिखा था:—

—'मनुष्य को संसार में सबका संग छोड़ देना चाहिए। और यदि वह संग छोड़ने में समर्थ न हो तो, फिर सज्जन पुरुषों का संग करना चाहिए,क्योंकि सज्जनों का संग औषधि के समान है। काम को भी त्याग देना चाहिए और यदि काम का त्याग न हो सके तो मोक्ष की कामना में मन को लगा दे, क्योंकि मोक्ष ही काम की औषधि है।'

इस लेख ने राजा की ज्ञान-दृष्टि खोल दी। वे सब का मोह छोड़ कर भगवान दत्तात्रेय जी के पास गये

और प्रणाम कर बोले—'मैं शरण में आया हूँ। मैं अति कामी और दुःखी हूँ, मेरे दुःख को दूर कीजिये।'

दत्तात्रेयजी ने कहा—'मैं तुम्हारे दुःख को दूर कर दूँगा। पर यह तो बतलाओ कि यह दुःख हुआ कैसे ?'

उनके प्रश्न ने राजा को विचार में डाल दिया। उन्होंने तीनों प्रकार के दुःखों पर और उनके स्थान एवं आत्मा पर विचार किया। देर तक विचार करने के अनन्तर अलर्क हँसकर बोले—'मैं पृथ्वी,जल, वायु, अग्नि, आकाश इनमें से कुछ भी नहीं हूँ। सुख की आशा शरीर को ही है और पंच तत्वों से बना हुआ यह शरीर ही बढ़ता-घटता एवं सुख-दुख का अनुभव करता है। आत्मा तो सभी में समान है। एक शरीर के सुख-दुःख का अनुभव दूसरे शरीर में रहनेवाली आत्मा को नहीं होता। जीव तो न छोटा होता न बड़ा; वह नित्य है, उसमें कोई विकार नहीं होता। सुख-दुःख की स्थिति मन में है। मैं मन,शरीर,अहङ्कार,बुद्धि से पृथक हूँ, इस कारण सांसारिक सुख-दुःख से परे हूँ। जिस राज्य को लेने का विचार मेरे भाई सुबाहु ने किया है उससे तो शरीर का ही सम्बन्ध है और शरीर के गुणों में मेरी प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि शरीर में स्थित होकर भी उससे पृथक्हूँ। शरीर में हड्डियाँ,मांस,हाथ,पैर,सर आदि होते हैं, किन्तु वे भी शरीर के नहीं रहते, तो फिर हाथी,घोड़े, रथ,

राज्य आदि उसके कैसे हो सकते हैं। इस संसार में मनुष्य का सम्बन्ध क्षणिक है। इस कारण यहाँ न तो कोई मेरा शत्रु है न मित्र; न मुझे दुःख है न सुख और न सेना, नगर कोष, हाथी, घोड़े, राज्य आदि ही मेरे हैं और न किसी दूसरे के। जिस प्रकार आकाश तत्व के एक रहने पर भी घड़ा, कमण्डल आदि का आकाश स्थान भेद के कारण अलग-अलग दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा, तत्व-रूप में एक होनेपर भी अलर्क, काशीराज, सुबाहु आदि में पृथक-पृथक समझ पड़ती है। इसमें केवल शरीरों की ही भिन्नता है। यथार्थ में सब एक ही है।'

यह सब सोचने के बाद राजा अलर्क ने हाथ जोड़कर दत्तात्रेयजी से कहा--'मुझे आत्मज्ञान होगया, इस कारण मुझे कोई भी दुःख नहीं है। दुःख तो उन्हीं को होता है, जिन्हें आत्मज्ञान नहीं होता। मनुष्य का मन जिस-जिस वस्तु से आसक्ति रखता है, उसी-उसी वस्तु के कारण उसे दुःख होता है। यदि किसी चूहे, पक्षी आदि को बिल्ली खाले तो मनुष्य को दुःख नहीं होता, किन्तु, यदि उसके किसी पालतू पशु को कोई खाले तो उसे बड़ा दुःख होता है। मैं तो प्रकृति से परे हूँ, मुझे न कोई दुःख है, न सुख।'

दत्तात्रेयजी प्रसन्न होकर बोले--'तुमने जो कहा, वह यथार्थ ही है। ममता ही सब दुःखों का कारण है। 'यह मेरा

है' यही ममत्व का भाव दुःख का कारण होता है। जब ममता दूर होजाती है, तब निवृत्ति हो जाती है। संसार में अज्ञानरूपी महावृक्ष फैला हुआ है। इस (वृक्ष) का अंकुर 'अहङ्कार' (ममत्व) है; स्कंभ मेरापन है; बड़ी-बड़ी शाखाएँ घर, पृथ्वी आदि हैं; पत्ते धन-धान्य-स्त्री-पुत्रादि हैं। पुष्प पाप-पुण्य और फल सुख-दुःख हैं। मूर्खों के साथ रूपी जल से इस वृक्ष को पुष्टि मिलती है; कार्य संबन्धी विधि-(निषेध) रूपी भ्रमर इस पर गूँजते हैं। जो सत्संग रूपी पाषाण पर विद्यारूपी कुल्हाड़ी को तेजकर इस ममता-रूपी अज्ञान-महा-वृक्ष को काट डालते हैं वे ही मोक्ष के मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं। सब ज्ञान का तत्व इतना ही है कि शरीर और आत्मा एक में रहते हुए भी उसी प्रकार अलग-अलग हैं जैसे गूलर का फल और उसके अन्दर रहनेवाले छोटे-छोटे भुनगे। क्षेत्रज्ञ पुरुष सब से परे है।'

राजा ने हाथ जोड़कर कहा—'मेरा मन विषयों में आसक्त है और स्थिर भी नहीं है। मुझे वह योग बतलाइये जिससे मैं आवागमन से छूटकर निर्गुणता को प्राप्त हो शाश्वत परब्रह्म में लीन हो जाऊँ।'

—:o:—

अध्याय ३९-४२

योग, प्राणायाम, योग के विघ्न, सिद्धियाँ, योगचर्या, ओश्म् का माहात्म्य

दत्तात्रेयजी बोले—'ज्ञान का आश्रय लेकर अज्ञानी का साथ छोड़ देने से ही मुक्ति मिलती है और प्रकृति के गुणों से अलग होने से ही ब्रह्म से एकता प्राप्त होती है। मुक्ति योग से होती है और योग ज्ञान से प्राप्त होता है। दुःख से ज्ञान उत्पन्न होता है और ममत्व से दुःख की प्राप्ति होती है। संसार की वस्तुओं से संग छोड़ देने से ही ममत्व का नाश होता है, ममत्व के न रहने पर ही सुख की प्राप्ति होती है; संग-हीन होने से वैराग्य होता है, वैराग्य के कारण ममत्व के दोषों का ज्ञान होता है। वैराग्य से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान वह है जिससे मुक्ति प्राप्त हो। और सब अज्ञान है। भोगने से ही पाप-पुण्य क्षीण होते हैं। कामना रहित होकर नित्य कर्त्तव्य पालन करने से कर्म के फल के बंधन में नहीं फँसना पड़ता। जब पूर्व जन्म के सब पाप-पुण्य क्षय हो जाते हैं और वर्त-मान कर्मों से पाप-पुण्य का संचय नहीं होता, तभी जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति मिलती है।'

'योग-निष्ठ होकर पहले आत्मा को जीतना चाहिए।

प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषय को और ध्यान से गुणों को जला डालना चाहिए। प्राण और अपान वायु के रोकने को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम से प्राण योगी के वश में हो जाते हैं। प्राणायाम तीन तरह के हैं, लघु, मध्यम और उत्तरीय। बारह मात्रा का लघु, २४ का मध्यम, ३६ का उत्तरीय होता है। पहले प्राणायाम से स्वेद को, द्वितीय से कम्पन को और तृतीय से शोक को जीते। ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित और प्रसाद, ये चार अवस्थाएँ मुक्ति को देने वाली हैं। अच्छे-बुरे कर्मों के फल से चित्त को हटाना, ध्वस्ति है। इस लोक और परलोक के कामों आदि से निवृत्ति, 'प्राप्ति' है। भूत-भविष्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के ज्ञान, प्रभाव आदि में समान भाव, संवित है। जिस प्राणायाम से मन, वायु, इन्द्रियाँ आदि प्रसन्न रहें उसे प्रसाद कहते हैं। शुद्ध भूमि पर उचित आसन लगाकर प्राणायाम प्रारम्भ करे। मन को रोककर वश में करे एवं आत्मा में ही आत्मा को देखे। इसमें प्राणों का निरोध किया जाता है इस कारण इसे प्राणायाम कहते हैं; मन को धारण किया जाता है इससे इसका नाम धारणा है; इन्द्रियों, विषयों आदि से मन को खींचकर पृथक किया जाता है, इससे इसे प्रत्याहार कहते हैं। प्राण-वायु को क्रम से धीरे-धीरे चढ़ाना चाहिए। कण्ठ, मुख,

नासिका के अग्रभाग एवम् दोनों भौंहों के बीच में तथा मूर्द्धा में उत्तरोत्तर जो धारणा की जाती है वह क्रम से उत्कृष्ट मानी जाती है।'

'योगाभ्यास के काल में बहुत बोलना, बहुत चलना, बहुत खाना, बहुत भूखा रहना, अधिक परिश्रम करना, चित्त को व्याकुल करना हानिकर होता है। अधिक ठण्डे, बहुत गरम, बहुत मनुष्यों या तेज वायु से युक्त स्थानों पर; अग्नि, जल के समीप, पुराने मकान में, चौरस्ते पर, श्मशान में, भयपूर्ण स्थान में एवम् अशुद्ध भूमि पर योगाभ्यास न करना चाहिए; नहीं तो अनेक विघ्न और रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि रोग और विघ्न उत्पन्न हों तो उचित उपायों द्वारा उन्हें शीघ्र दूर करना चाहिए। शरीर की हर तरह से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है। गुप्त रखने से ही योगाभ्यास में अधिक सफलता प्राप्त होती है। जिसे शीत, उष्ण, भय आदि न व्यापें उसे योग में सफल समझना चाहिए।'

'आत्म-दर्शन हो जाने पर भी योगी अनेक विघ्नों में फँस जाता है। उत्तम-उत्तम बातों और क्रियाओं की अभिलाशा, स्त्री, दान का फल, विद्या, धन, स्वर्ग की कामना, देवत्व, अमरत्व, आकाशगमन, अग्नि-जल-प्रवेश, आदि

बहुत ही भयंकर विघ्न समझे जाने चाहिए। इस प्रकार की उत्तम-उत्तम अभिलाषायें ही योगाभ्यास में प्रथम विघ्न हैं। इन विघ्नों से बचने पर वेद-शास्त्र, कला आदि के ज्ञान; दूर-से-दूर के स्थानों को देखने और वहाँ के शब्दों को सुनने और समझने की शक्ति, एवम् अन्य सभी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति की कामना योगी के हृदय में उत्पन्न होती है। इस प्रकार के विघ्न में पड़ जाने की वजह से योगभ्रष्ट होकर योगी बार-बार देव-योनियों में भ्रमण करता रहता है। योगी इस प्रकार के विघ्नों से बचकर क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन और बुद्धि इन सात सूक्ष्मों को धारणकर इनसे निवृत्ति प्राप्त कर ले। इस अवस्था को प्राप्त होने पर अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व, वशित्व, ऐश्वर्य इन आठ सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। जो योगी इन आठ सिद्धियों के फन्दे में नहीं फँसता वही परमपद को प्राप्त होता है। सब तरह के भोगों को भोगता और सब प्रकार के कामों को करता हुआ भी जो योगी उनमें लिप्त नहीं होता, वही परब्रह्म को प्राप्त होता है।

मान से आसक्ति और अपमान से उद्वेग उत्पन्न होता है। योगी को मान से सदा बचना चाहिए। नेत्र से देखकर पाँव रक्खे, वस्त्र से छानकर जल पिये, सत्य वचन बोले और बुद्धि-विवेक से विचार करे। योगी को कभी भी लोभ के

वश में होकर न तो कुछ मांगना चाहिए और न यज्ञ आदि में जाना चाहिए। बहुत प्रकार के ज्ञान से भी योग में विघ्न पड़ते हैं, इस कारण केवल वही ज्ञान प्राप्त करे जो उसके योगाभ्यास में सहायक हो। चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा ये योगी के लिए पाँच परम व्रत हैं। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड ये ही मुख्य तीन दण्ड हैं जिनको सिद्ध करलेने पर ही योगी त्रिदण्डी कहलाता है। सम-बुद्धि, प्रमाद रहित, पवित्र, एकान्त वासी, जितेन्द्रिय, नियताहार, बुद्धिमान योगी ही योगाभ्यास करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।'

'विश्वेश्वर, विश्वपाद, विश्वशिर, विश्वभावन परमात्मा का प्रत्यक्ष रूप समझकर ॐ का जप करे। ॐ में का अकार सतोगुण, उकार रजोगुण और मकार तमोगुण का प्रतीक है। ऊपर की अर्ध-मात्रा निर्गुण स्वरूप है। ॐकार के उच्चारण से योगी को समस्त सत् और असत् का बोध होता है, तीनों बन्धन छूट जाते हैं, एवं परमपद की प्राप्ति होजाती है। ॐकार ही वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप है। ॐकार की साधना से योगी अपने शुभ-अशुभ कर्मों के बंधनों से छूटकर ब्रह्म में लीन होजाता है।'

अध्याय ४३-४४

अरिष्टों का वर्णन, अलर्क का काशिराज के पास राज्य देने के लिए जाना, काशिराज को ज्ञान।

दत्तात्रेयजी बोले—'योगी को मृत्यु के पहले कुछ सूचना मिल जाती है। उन अरिष्टों को देखकर उसे अपनी मृत्यु के समय को समझ लेना चाहिए। देवमार्ग, ध्रुव, अरुन्धती और शुक्र न देख पड़ें तो मृत्यु एक वर्ष में निश्चित है। प्रातःकाल के सूर्य की लाली और अग्नि की उष्णता न समझ पड़ने से ग्यारह महीने में; स्वप्न में विष्ठा, मूत्र, वमन, सोना, चाँदी देखने से दस महीने में; सोने का वृक्ष देखे तो नौ महीने में; एकदम स्थूल से कृश या कृश से स्थूल होजाय तो आठ महीने में; पाँव की एड़ी या तलुए का चिन्ह धूल में न देख पड़ने से सात महीने में; गिद्ध, कबूतर, कौआ, उल्लू, बाज के सरपर बैठने से छः महीने में; अपनी ही छाया न देख पड़ने से पाँच महीने में; बिना मेघ के दक्षिण में बिजली चमकती देखे तो चार महीने में; घी, तेल, जल में अपने शरीर को बिना सर के देखने से एक महीने में; शरीर से मृतक की-सी गंध आने पर दो सप्ताह में; स्नान करने पर भी जिसके पाँव-हृदय सूखें और पानी पीने पर भी गला सूखता जाय उसकी मृत्यु दस दिन में; अपने को कीचड़ में सना देखे, स्वप्ने में रीछ, बन्दर, गदहे, ऊँट पर सवार

दक्षिण दिशा को जाते देखे, लाल कपड़े पहने पिशाचिनों को उपद्रव करते देखे और भयभीत रहे उसकी मृत्यु तत्काल समझनी चाहिए। जैसे सभी काम धीरे-धीरे होते हैं, उसी तरह योग की साधना धीरे-धीरे हो सकती है। घर वह है जिसमें रहना हो, भोजन वह है जिससे शरीर पुष्ट हो, तब फिर ममता से क्या लाभ। ममता त्यागने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।'

अलर्क ने हाथ जोड़कर कहा—'आपके उपदेश से मेरे सब संशय दूर होगये। मैं काशिराज को और अपने भाई सुबाहु को अपना बड़ा हितू मानता हूँ। उन्होंने मेरे राज्य को छीनकर मुझे जो क्लेश पहुँचाया वह मेरे लिए लाभ-दायक हुआ। मोह के कारण मैं दुःखी होकर आपकी शरण में आया हूँ। आपने ऐसा उपाय बताया है जिसके आधार पर मैं जन्म-मरण के फन्दे से छूट जाऊँगा। अब मैं गृहस्थाश्रम को छोड़कर मोक्ष-साधन करूँगा।'

दत्तात्रेयजी से आशीर्वाद पाकर अलर्क काशिराज और अपने भाई सुबाहु के पास गये और हँसकर बोले कि इस राज्यको तुममें से जो चाहे भोगो,मुझे इसकी तनिक भी इच्छा नहीं है। उनकी बातें सुनकर काशिराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अलर्क से पूछा—'क्या कारण है कि आप इस प्रकार राज्य को लात मारकर जा रहे हैं। आप तो उन

क्षत्रियों में से हैं जो राज्य के लिए प्राणों की परवा न कर युद्ध करते हैं और जीते-जी अपनी भूमि को किसी दूसरे के हाथों में नहीं जाने देते ?'

अलर्क यह कहकर वहाँ से चले गए कि भगवान दत्तात्रेय की कृपा से जन्म-मरण के बन्धन में डालने वाला ममत्व मुझसे दूर हो गया है, अब मैं अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर योगाभ्यास द्वारा ब्रह्म में लीन होने को ही सबसे उत्तम समझता हूँ।

अपने भाई को जाते देख सुबाहु ने काशिराज से कहा—'आप सुखी हों। मैं जिस कार्य के लिए आया था वह पूरा होगया, अब मैं जाता हूँ।'

उनकी बात सुनकर काशिराज को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। उन्होंने उन्हें रोककर उनसे पूछा—'आप तो अपने छोटे भाई से राज्य लेने के उद्देश्य से आए थे। अब मैंने यह राज्य जीतकर आपके अधीन कर दिया है, आप इसे भोगिए। इसे इस प्रकार छोड़कर जाने का क्या कारण है ?'

सुबाहु ने हँसकर कहा—'लड़कपन से ही अपनी माता से ज्ञान प्राप्तकर मैं योगाभ्यास द्वारा मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में लग गया हूँ। मेरे भाई राज्य करते-करते उसमें आसक्त होगये थे। उन्हें मोक्ष के मार्ग से विचलित होते देख मैंने

उन्हें राज्य से अलगकर उचित मार्ग पर लाने के विचार से ही आपको युद्ध के लिए तैयार किया था। जो मनुष्य अपने स्वजनों, बान्धवों और मित्रों को दुःख में छोड़कर स्वयं सुखी होना चाहते हैं उन्हें अवश्य दुःख होता है, कारण कि उनकी आत्मा सदा दुःखी रहती है। शान्ति और सिद्धि उसी को प्राप्त हो सकती है जो अपनी आत्मा को सन्तुष्ट रख सकता है। अलर्क को योगाभ्यास के मार्ग में लगा हुआ देखकर अब मैं सुख से सिद्धि के लिए प्रयत्न कर सकूँगा।'

काशिराज ने कहा कि आपने अपने भाई का तो उपकार किया, किन्तु मेरा उसी प्रकार कल्याण क्यों नहीं करते? सज्जनों का सत्संग सदा उत्तम फल का देनेवाला ही होता है। सुबाहु ने उन्हें ममत्व-त्याग पर उपदेश देकर आत्मबोध करा दिया। सुबाहु के चले जाने पर काशिराज अलर्क को उनका राज्य वापस देकर अपने नगर को चले गए। अलर्क भी अपने पुत्र को राज्य देकर तप करने के लिए वन में चले गए और योगाभ्यास के बाद उन्होंने घोषित किया कि योग से बढ़कर अधिक सुख किसी भी दूसरे कार्य में नहीं है।'

'अपने पिता को उपदेश देकर सुमति नामक पुत्र मोक्ष की प्राप्ति के लिए वन में चले गए। ब्राह्मण ने भी अपने

पुत्र से उपदेश पाकर पहले वानप्रस्थ-आश्रम में और उसके अनन्तर संन्यास-आश्रम में प्रवेश किया।'

अध्याय ४५-५३

सृष्टि का वर्णन, ब्रह्मा, तत्व, ऋषि, देवता आदि की उत्पत्ति

जैमिनिजी बोले—'हे श्रेष्ठ पक्षियों आप लोगों ने मुझे प्रवृति और निवृति नामक वैदिक धर्मों को अच्छी तरह से समझा दिया। प्रवृति, निवृति, ज्ञान, कर्म के सम्बन्ध में आपकी बुद्धि जितनी निर्मल है उतनी और किसी दूसरे की नहीं है। अब आप कृपाकर मुझे उत्पत्ति, प्रलय-देव-पितर-ऋषि-भूत-सृष्टि, मनवन्तर, वंशानुचरित्र, कल्पविभाग, भूलोक, स्वर्गलोक, पाताल, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, पृथ्वी, समुद्र आदि का वर्णन सुनाइए।'

पक्षी बोले—'पूर्वकाल में मार्कण्डेयजी ने शान्त और व्रती क्रौष्टुकीजी से इस सम्बन्ध में जो कहा था उसी का वर्णन करता हूँ सुनिए। एकबार क्रौष्टुकीजी ने मार्कण्डेयजी से सृष्टि के सम्बन्ध में पूछा। मार्कण्डेयजी बोले—'सबसे पहले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उनके मुख से वेद पुराण उत्पन्न हुए। ऋषियों ने पुराणों की अनेक संहितायें बनाईं और वेदों के हजारों विभाग किये। ब्रह्माजी के मानसी पुत्र सप्तर्षियों ने वेदों

को ग्रहण किया और भृगु आदि ने पुराणों को। भृगु से च्यवन ने और च्यवन से अन्य ऋषियों ने एवं उनसे दक्ष ने उसे प्राप्त किया। सब प्रकार के पापों को दूर करनेवाले उस पुराण को मैंने दक्षजी से प्राप्त किया। उसी पुराण को मैं सुनाता हूँ। उसमें सृष्टि आदि का सब वर्णन है। प्रलय होने पर केवल निर्गुण, अविज्ञेय, आदि-अन्त रहित परब्रह्म ही शेष रह जाता है। सृष्टि के आदि में उसी ब्रह्म से प्रधान-तत्त्व की उत्पत्ति होती है। क्रमशः वैकारिक, तैजस, तामस, तीन प्रकार के अहंकारों की उत्पत्ति होती है। इन्हीं से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की, एवं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहंकार से कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, इन ज्ञानेन्द्रियों की; एवं पाँव, गुदा, लिंग, हाथ, वाणी इन पाँच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। आदिकाल में अण्डरूप ने क्षेत्रज्ञ ने प्रवेशकर सृष्टि के क्रम को संचालित किया। इस प्रकार ब्रह्माण्ड और उसमें पाये जाने वाले विभिन्न तत्त्वों की उत्पत्ति होती है।'

प्रलयकाल में प्रकृति और पुरुष अपने-अपने गुणों के अनुसार शान्त रहते हैं। सृष्टि के आदि में गुणों के अनुसार उन्हीं में क्षोभ होता है और कमलासन ब्रह्माजी उत्पन्न होकर सृष्टि के क्रम का विकाश करते हैं। रजोगुण का

आश्रय लेकर वे ब्रह्मारूप से सृष्टि का उत्पादन करते हैं, सतोगुण का आश्रय लेकर विष्णुरूप से चराचर का पालन करते हैं और तमोगुण का आश्रय लेकर रुद्ररूपसे सबका संहार करते हैं। ब्रह्माजी की आयु दिव्य सौ वर्षों की होती है। काल का विभाग इस प्रकार किया जाता है। दस-पाँच निमेष का एक काष्ठा, तीस काष्ठा का एक कला, तीस कला का एकमुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक दिन, तीस दिन का एक महीना, छः महीने का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष। पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है। कृष्ण पक्ष पितरों के एक दिन के बराबर होता है। अयन दो होते हैं, दक्षिणायन और उत्तरायन। दक्षिणायन देवतों की एक रात्रि और उत्तरायन उनका एक दिन होता है। इस प्रकार देवताओं का एक दिन मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर होता है। युगों का काल-परिमान इस प्रकार है:—देवताओं के चार हजार वर्षों का सतयुग, चार-चारसौवर्षों के उसके संध्या-संध्यांश; तीन हजारवर्ष का त्रेतायुग, तीन-तीन सौ वर्षों के उसके संध्या-संध्यांश; दो हजार का द्वापर, दो-दो सौ वर्षों के उसके संध्या-संध्यांश और एक हजार वर्षों का कलियुग, और सौ-सौ बर्षों के उसके संध्या-संध्यांश होते हैं। इसी को बारह वर्षीय-कहते हैं। इन दिव्य बारह हजार वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु भोग करते हैं। प्रत्येक मनु

के साथ उसके काल के देवता, सप्तर्षि मनु-पुत्र, उत्पन्न होते हैं। इकहत्तर चतुर्युग का एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्मा के दिन के समाप्त होने पर नैमित्तिक-प्रलय होता है; इसमें भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक का नाश होता है। रात्रि में ब्रह्माजी विश्राम करते हैं और उसके समाप्त होने पर वे फिर सृष्टि की रचना करते हैं। इस प्रकार के ३६० दिन का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है और वे अपनी आयु के सौ वर्ष तक सृष्टि का कार्य करते रहते हैं। ब्रह्मा के ये सौ वर्ष 'परम' कहे जाते हैं और पचास वर्ष परार्द्ध। इस समय पद्म कल्प चल रहा है। यह पद्म महाकल्प के परार्द्ध का वाराह कल्प है।'

'पद्म महाकल्प के अन्त में उठने पर ब्रह्माजी ने संसार को सूना देख अव्यय नारायण की स्तुति की। नारायण ने उठकर पृथ्वी के उद्धार के विचार से वाराह रूप धारण किया। वाराह भगवान ने यज्ञ-संयुक्त वेदों का उद्धार कर पातालसे पृथ्वीका उद्धार किया एवं कच्छपरूप धारणकर उसे जल के ऊपर स्थिर रक्खा। फिर विभिन्न पर्वतों, द्वीपों, लोकों आदि की कल्पना हुई। प्रथम पर्वतसर्ग, द्वितीय तिर्यक्सर्ग, की कल्पना हुई। इस सर्ग के २८ प्रकार के तमोगुणी, अज्ञानी, पशु आदि की उत्पत्ति हुई जो अज्ञानी होते हुए भी अपने को अज्ञानी समझते हैं। उनके अन्तःकरण में प्रकाश

है। इस सृष्टि से संतुष्ट न होकर ब्रह्माजी ने ऊर्ध्व श्रोत-सर्ग की कल्पना की। इसमें इक्कीस प्रकार के देवगण की की सृष्टि हुई; इनमें सुख-प्रेम बहुत था। भीतर-बाहर प्रकाशमान होने के कारण यह देवसर्ग भी कहलाया। इसके अनन्तर अव्यक्त अर्वाक् श्रोतसर्ग की कल्पना हुई। इसमें तमोगुण प्रधान मनुष्यों की सृष्टि हुई। पाँचवाँ अनुग्रहसर्ग है जिसमें विपर्यय, सिद्ध, शान्ति, तुष्टि की कल्पना हुई। छठें सर्ग में भूतादिकों की सृष्टि हुई। दूसरी प्रकार की गणना के अनुसार प्रथमसर्ग में महान् अथवा ब्रह्मा की, दूसरे सर्ग में तन्मात्राओं की, तीसरे में इन्द्रियों की, चौथे में स्थावर की, पाँचवें में तिर्यक योनि की, छठें में देवताओं की, सातवें में मनुष्यों की और आठवें में सात्विक-तामस प्रधान जीवों की उत्पत्ति हुई। नवाँ सर्ग कौमार सर्ग कहलाता है; इस प्रकार प्रजापति के नव सर्ग हैं।

'ब्रह्माजी ने देवता, असुर, पितर और मनुष्य की सृष्टि का विचार किया। उन्होंने योगयुक्त होकर अपनी आत्मा को जल में मिला दिया। उस समय उनमें तमोगुण की मात्रा अधिक हो गई इस कारण उनकी जंघाओं से असुरों की उत्पत्ति हुई। उस तमोगुणी शरीर को छोड़कर ब्रह्मा ने दूसरा शरीर धारण किया। उनका तमोगुणी शरीर रात्रि होगया। दूसरे शरीर में सतोगुण की वृद्धि हुई, जिससे

उनके मुख से देवताओं की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी ने उस शरीर को भी छोड़ दिया। वह शरीर दिन होगया। ब्रह्मा जी ने दूसरा शरीर धारण किया जिससे पितरों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के उस शरीर से सन्ध्या की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी ने फिर रजोगुण प्रधान शरीर धारण किया जिससे मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। उनके उस शरीर के त्यागने पर उससे ज्योत्स्ना (प्रातःकाल) की उत्पत्ति हुई। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने रजोगुण और तमोगुण युक्त शरीर धारण कर क्षुधा की उत्पत्ति की। क्षुधा ने उत्पन्न होते ही ब्रह्माजी को खाने की इच्छा की। उस समय जिन प्राणियों ने ब्रह्मा की रक्षा का उद्योग किया वे राक्षस और जिन्होंने कहा कि ब्रह्मा को खा जाओ वे यक्ष कहलाये। उस समय अप्रियभाव के कारण ब्रह्माजी के बाल झड़ गए, जो सर्प हो गए। उस समय ब्रह्माजी को क्रोध हुआ जिससे मांसाहारियों की उत्पत्ति हुई। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने वाणी का स्मरण कर गन्धर्वों की सृष्टि की। इन आठ देवयोनियों की सृष्टि के अनन्तर पशु-पक्षी, औषधि आदि की उत्पत्ति की। उनके मुख से वेद, गायत्री छन्द आदि की उत्पत्ति हुई। युग के आदि में जिसकी जो भावना थी उसी प्रकार के जीवों की उत्पत्ति इस समय ब्रह्माजी के द्वारा हुई।

सृष्टि की वृद्धि के विचार से ब्रह्माजी ने अपने मुख से

सतोगुणी स्त्री-पुरुषों की, छाती से भोग-क्रोध-प्रधान-रजोगुणी स्त्री-पुरुषों की, जंघाओं से इच्छाशील-युक्त-रजोगुण-तमोगुण-प्रधान स्त्री-पुरुषों की, और पैरों से श्रीहीन-अल्पमतिवाले, तमोगुण-प्रधान स्त्री-पुरुषों की सृष्टि की। पैरों से उत्पन्न होनेवाले स्त्री-पुरुष आपस में मैथुन द्वारा सन्तानोत्पत्ति करने लगे। उस समय वे स्त्री-पुरुष बिना घर के वनों, पर्वतों में घूमते हुए जीवन व्यतीत करते थे। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने ऐसे जीवों की सृष्टि की जिनको समय आदि का कुछ ज्ञान न था और जो धर्म, शील आदि के पचड़े में न पड़, सदा सुखी रहते थे। कुछ समय बाद मनुष्यों ने पुरों का निर्माण किया और आपस में संघर्ष होने के कारण दुर्गों का निर्माण किया। दुर्गों के निर्माण में पृथ्वी को नापने की आवश्यकता पड़ी इस कारण उन्होंने नाप का निर्णय किया। पृथ्वी के कण को आधार मानकर उन्होंने तीस परमाणु का एक त्रसरेणु, तीस त्रसरेणु का एक बालाग्र, तीस बालाग्र का एक निष्कल, तीस निष्कल का एक यूका, तीस यूका का एक यवोदर, ग्यारह यवोदर का एक यवमध्य, ग्यारह यवमध्य का एक अंगुल, छः अंगुल का एक पद, दो पद का एक विपस्ति, दो त्रिपस्ति का एक हाथ, चार हाथ का एक धनुष, (दण्ड, नासिकायुग) दो हजार धनुष का एक गव्यूति, दो गव्यूति का एक योजन

होता है। इस नाप के उचित प्रयोगों द्वारा मनुष्यों ने पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर आदि का निर्माण किया। पुर एक योजन का चौथाई चौड़ा और दो योजन लम्बा होता है, उसके बाहर बाँस लगाये जाते हैं और पानी के बहाव के लिए पूर्व की ओर ढाल रक्खा जाता है। खेटक पुर का आधा होता है। खेटक का आधा कर्वट होता है। द्रोणीमुख कर्वट का आधा होता है और द्रोणीमुख का आधा अन्तर्भाग होता है। वह दुर्ग जिसमें खाई न हो, पुर कहलाता है। पुर के जिस भाग में मंत्री, सामंत आदि रहते हों और जहाँ भोग की सामग्री अधिक हो उसे शाखा नगर कहते हैं। ग्राम वह है जहाँ अधिकतर शूद्र और समृद्धशाली किसान रहते हों और जहाँ की भूमि जोतने-बोने योग्य हो। किसी विशेष उद्देश्य से नगर के बाहर जो आबादी बसाई जाय उसे 'बस्ती' कहते हैं। राजा के कृपापात्रों के संरक्षण में रहनेवाले बलवान, दुष्ट प्रकृतिवाले लोग जबर्दस्ती दूसरों की भूमि पर जो बस्ती बसा लेते हैं उसे 'अक्रिमी' कहते हैं। ग्वालों की वह बस्ती जहाँ दूकानें न हों 'घोष' कहलाती है। इस प्रकार मनुष्य ने गुफाओं और वृक्षों के नीचे रहने के बजाय घर बनाकर और बस्ती बसाकर रहना प्रारंभ किया।'

'पहले स्त्री-पुरुष प्रेमपूर्वक रहते थे। तब कल्पवृक्षरूपी

पेड़ों के नीचे उनको सब प्रकार के सुख, भोजन आदि प्राप्त हो जाते थे। कुछ काल बीतने पर उनमें आपस में विद्वेष उत्पन्न हो गया। आपस के घातप्रतिघात के करण कल्पवृक्ष अदृश्य होगये। सब भूखों मरने लगे। उन्हें नष्ट होते देख दैव ने वर्षा की और चौदह प्रकार की औषधियों को उत्पन्न कर सबका भरण-पोषण किया। इस प्रकार फिर बहुत काल तक बिना किसी परिश्रम के स्त्री-पुरुष पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली उन चौदह प्रकार की औषधिओं से अपना कार्य चलाते रहे। अन्त में उन्हें राग और लोभ ने आघेरा। सबने जोर-जबर्दस्ती से अपने-अपने बल के अनुसार वृक्षों, गुल्मों, नदियों, पर्वतों, क्षेत्रों आदि पर अपना-अपना अधिकार जमा लिया। इस राग-द्वेष के कारण सब औषधियाँ नष्ट हो गईं। पृथ्वी ने सब को अपने में लय कर लिया। फिर प्रजा भूख के कारण तड़प-तड़पकर मरने लगी। लोकक्षय होते देख ब्रह्माजी ने मेरु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी को दुहा। फिर जनता के कल्याण के लिए सत्रह प्रकार की ग्राम्य और चौदह प्रकार की वन-औषधियाँ प्रकट हुईं। ब्रह्माजी ने उनकी वृद्धि के लिए हस्तसिद्धि द्वारा वार्तोपाय किया; इस उपाय से उत्पन्न होनेवाली औषधियों की संज्ञा कृष्टपच्या हुई। फिर ब्रह्माजी ने न्याय और गुणों के अनुसार मर्यादा स्थापित की और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और

शूद्रों के लिए विभिन्न फलों और लोकों की कल्पना की।

ब्रह्माजी ने ध्यान करते हुए मानसी प्रजा को उत्पन्न किया, किन्तु ब्रह्म-ज्ञान युक्त होने के कारण उससे और नवीन प्रजा की वृद्धि न होसकी। तब चिन्तित होकर ब्रह्माजी ने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरस,मरीचि,दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ नामक अपने ही समान तेजस्वी पुत्रों की मानसिक सृष्टि की। ये तेजस्वी होने के कारण नवब्रह्म कहलाये। इन्हें प्रजा-वृद्धि करते न देख ब्रह्माजी को क्रोध हुआ, जिस से रुद्र की उत्पत्ति हुई। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने संकल्प धर्म, और सनक-सनन्दन आदि को उत्पन्न किया। राग, द्वेष से रहित होने के कारण इन लोगों ने भी प्रजा-वृद्धि न की। ब्रह्माजी को कुपित,चिन्तित देख, एक ऐसा दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ जिसका आधा शरीर स्त्री का और आधा शरीर पुरुष का था। उसने ब्रह्मा को उपदेश दिया कि सृष्टि कि वृद्धि के लिए आत्मा का विभाजन करो। उसके अन्तर्धान होते ही ब्रह्माजी ने स्त्री और पुरुष का पृथक-पृथक विभाजन कर दिया और अपने शरीर से स्वायंभुव मनु, एवं शतरूपा की सृष्टि की। मनु ने शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र एवं प्रसूति तथा ऋद्धि नामक दो कन्यायें उत्पन्न कीं। प्रसूति से दक्ष प्रजापति ने चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। इनकी संन्तानों से पृथ्वी भर गई।

दक्ष-प्रसूति की श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, कीर्ति नामक तेरह कन्याओं से धर्म ने विवाह किया और ख्याति को भृगु ने, सती को भव ने, सम्भूति को मरीचि ने, स्मृति को अंगिरा ने, प्रीति को पुलस्त्य ने, क्षमा को पुलह ने, अनुसूया को अत्रि ने, स्वाहा को अग्नि ने, स्वधा को पितर ने अपनी पत्नी बनाया। श्रद्धा का पुत्र काम हुआ, लक्ष्मी का दर्प, धृति का नियम, तुष्टि का संतोष, पुष्टि का लोभ, मेधा का श्रुत, क्रिया का नय-विनय, बुद्धि का बोध, लज्जा का विनय, वपु का व्यवसाय, शान्ति का क्षेम, सिद्धि का सुख, कीर्ति का यश पुत्र हुआ। ये सब धर्म के पुत्र हैं। काम का पुत्र हर्ष हुआ। अधर्म की हिंसा नामक स्त्री से अनृत नामक पुत्र और निऋति नामक कन्या हुई, जिनसे आगे चलकर नरक, भय, माया, वेदना, दुःख, व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध, अलक्ष्मी आदि का प्रादुर्भाव हुआ। दुःसह नामक विकराल विघ्न की भी उत्पत्ति हुई। वह उत्पन्न होते ही तीनों लोकों को खाने के लिए तत्पर होगया। ब्रह्माजी ने उसे रोक कर वर दिया कि तुम उन्हीं स्थानों पर वास करो जहाँ अधर्मी, दुष्ट, पर-द्रोही, स्त्री पुरुष; पंक्ति-भेद, वृथा-पाक, पाक-भेद, गृह-कलह, वृथा-उपवास, जुआ, छल, व्यसन, हिंसा आदि में रत हों। तुम सज्जन, ज्ञानी, परोपकार-रत, सदाचारी, सतकर्मों में लगे हुए स्त्री

पुरुषों के पास कभी न जाना। ब्रह्माजी से वरदान पाकर दुःसह अपने पुत्र,स्त्री,कन्या,मंत्री आदि के साथजाकर, दुष्ट स्त्री-पुरुषों के बीच में वास करने और संसार में दुःख, दैन्य, पीड़ा का प्रसार करने लगा।'

'ऊपर वालेतामसी सर्ग के अनन्तर ब्रह्माजी के कोप से रुद्र नामक नीलवर्ण एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही वह खूब जोर-जोर से रोने लगा। ब्रह्माजी ने उससे रोने का कारण पूछा। उसने कहा कि आपने मेरा नामकरण नहीं किया है। उसे शान्तकर ब्रह्माजीने उसका नाम रुद्र रक्खा। रुद्र के साथ सात पुत्र और उत्पन्न हुए थे। उन्हेंभीरोते देख ब्रह्माजी ने क्रम से उनके नाम भव, सर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव रक्खे और उन्हें एक-एक पत्नी देकर क्रम से सूर्य,जल,पृथ्वी,अग्नि,वायु,आकाश और चन्द्रमा में स्थान दिया। इनसे क्रमशः शनि, शुक्र, मंगल, मनोजव, स्कन्ध,सर्ग,सन्तान और बुध नामक पुत्र उत्पन्न हुए। रुद्र ने दक्ष की कन्या सती को अपनी पत्नी बनाया। सती ने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर छोड़ दिया और हिमालय की स्त्री मैना के यहाँ जन्म लिया। मैनाक पर्वत उसका भाई हुआ। भृगु की स्त्री ख्याति से धाता, विधाता नामक पुत्र और लक्ष्मी नामक कन्या का जन्म हुआ। लक्ष्मी ने देव-देव नारायण जी को पति के रूप में स्वीकार

क्रिया। धाता, विधाता से मार्कण्डेय के पिता मृकण्डु हुए। मार्कण्डेय के वेदशिरा नामक पुत्र हुए। वशिष्ठ की ऊर्ज्जा नामक स्त्री से रन, गात्र, ऊर्ध्ववाहु, सबल, अनघ, सुतपा, और शुक्र नामक सात पुत्र हुए जो सप्तर्षि कहलाये। अग्नि की स्वाहा नामक स्त्री से पावक, पवमान और शुचि नामक तीन पुत्र हुए, जिनसे ४९ शाखाएँ प्रकट हुईं। अग्निष्वाता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ये पितरों के विभेद हैं। पितरों की पत्नी स्वधा के मेना और धारिणी नामक दो ब्रह्मवादिनी कन्याएँ हुईं। इस प्रकार इस मैथुनी प्रजा से पृथ्वी परिपूर्ण होगई।'

अध्याय ५३-६०

जम्बू, शाक आदि सात द्वीप; हिमवान, मेरु आदि पर्वत; चार वन, सरोवर; भारत कर्म-भूमि; गंगा की धाराएँ; भारत के नौ विभाग, वन, पर्वत, नदी, प्रदेश; वैष्णव-पाद, कच्छप पर देश-नक्षत्र; विभिन्न वर्ष

क्रौष्टुकिजी के प्रश्न करने पर मार्कण्डेयजी बोले—'इकहत्तर चतुर्युगों का अथवा मनुष्यों के ३०६८२०००० वर्ष का एक मन्वन्तर होता है। स्वायंभुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, ये छः मन्वन्तर बीत चुके। इस समय

वैवस्वत नामक मन्वन्तर चल रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायंभुव मन्वन्तर के काल में स्वायंभुव मनु के दस प्रतापी पुत्र हुए। इनमें से मेधा, अग्निबाहु, मित्र नामक तीन पुत्रों ने राज्य और भोग को छोड़कर तप-योग में चित लगाया। शेष सात पुत्रों में मनु ने अपने राज्य को इस प्रकार बाँट दिया:—आग्नीध्र को जम्बूद्वीप, मेधातिथि को प्लक्षद्वीप, वपुष्मान को शाल्मलिद्वीप, ज्योतिष्मान को कुशद्वीप, द्युतिमान को क्रौंचद्वीप, भव्य को शाकद्वीप, सवन को पुष्करद्वीप का राज्य दिया। प्रत्येक के अनेक पुत्र हुए जिन्होंने अपने-अपने पिता के द्वीपों को आपस में विभिन्न भागों में बाँट लिया। प्रत्येक भाग का नाम विभिन्न वर्ष पड़ा। अग्नीध्र के नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावर्त, रम्य, हिरण्य, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल नामक नौ पुत्र हुए, जिनके नाम पर जम्बूद्वीप नौ वर्षों में बँट गया। इन वर्षों (देशों) में सभी स्त्री-पुरुष समान भाव से सुख से रहते हैं, उनमें भेद-भाव, धर्म-अधर्म, युग-परिवर्तन का भय नहीं है। अग्नीध्र के नाभि और नाभि के ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव के भारत आदि सौ पुत्र हुए। भरत के नाम पर ही हिमालय पर्वत के दक्षिण का देश भारतवर्ष कहलाया। भरत अपने पुत्र सुमति को राज्य देकर वन में तप के लिए चले गये।'

'जम्बू, प्लक्ष आदि द्वीप क्रमशः एक दूसरे से दुगुने हैं और प्रत्येक क्रमशः लवण, ईख, रस, सुरा, घृत, दधि, दूध, जल के सागरों से घिरा हुआ है। जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। इसमें हिमवान, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत, और शृंगी नामक सात प्रधान पर्वत हैं। इलावर्त के मध्य में सुमेरु नामक विशाल पर्वत है जिसपर ब्रह्मलोक तथा इन्द्र, वरुण आदि दिग्पालों के लोक स्थित हैं। इसके चारों ओर मन्दर, गंधमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक चार पर्वत हैं। मेरु के पश्चिम में निषध और पारिपात्र हैं, पूर्व में जठर और देवकूट हैं, दक्षिण में हिमवान् और कैलाश हैं, एवं उत्तर में शृंगवान और जारुधि नामक मर्यादा पर्वत हैं। गंधमादन पर्वत पर एक विशाल जामुन का वृक्ष है, वहीं से जम्बूनदी प्रवाहित होती है। इन्हीं से जम्बूद्वीप का नाम पड़ा। विभिन्न स्थानों पर भगवान के विभिन्न रूपों की आराधना होती है।'

'पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में नन्दनवन, पश्चिम में वैभ्राज, उत्तर में सावित्र नामक चार प्रसिद्ध वन हैं तथा क्रम से अरुणोद, मानस, शीतोद और महाभद्र नामक चार प्रसिद्ध सरोवर हैं। मेरु के उत्तर में अनेक दिव्य पर्वत, वन, उपत्यकाएँ, नद, सरोवर, उपवन आदि हैं, जिनमें देव, यक्ष, किन्नर, अप्सरा, गंधर्व आदि सुखपूर्वक

स्वच्छन्द होकर विहार करते रहते हैं। दक्षिण की ओर भारतवर्ष है, जो कर्म-भूमि माना जाता है। भारतवर्ष में ही कर्म द्वारा उत्तम,मध्यम,निकृष्ट फलों की प्राप्ति होती है।'

'सबके आधारभूत और जगद्योनि नारायणजी के चरण से त्रिपथगामिनी गंगाजी उत्पन्न हुईं। वे मेरु की पीठपर पहुँचकर चार धाराओं में बहने लगीं,एवं मेरुकूट, मन्दराचल, चैत्रवन, वरुणोद सरोवर,शीतान्त पर्वत आदि से होती हुईं भूमिपर आईं और भद्राश्वखण्ड में होती हुईं समुद्र में जा मिलीं। इसी प्रकार अलकनन्दा दक्षिण में गंधमादन पर्वत से होकर मेरुपादवन एवं नन्दनवन को प्लावित करती हुई मानसरोवर में जा पहुँची तथा वहाँ से हिमवान पर्वत पर चली गई; वहाँ शिवजी ने उसे अपनी जटाओं में धारण कर लिया। कुछ काल बाद राजा भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर महादेवजी ने उसे अपनी जटाओं से छोड़ दिया। फिर गंगाजी सात धाराओं में बहने लगीं, जिनमें से चार धाराएँ तो जाकर समुद्र में मिल गईं, शेष तीन धाराएँ पूर्व की ओर गईं, जिनमें से एक धारा राजा भगीरथ के पीछे दक्षिण की ओर गई। गंगाजी की पश्चिम ओर वाली धारा केतुमालवर्ष में आकर चार समुद्र से जा मिली और चौथी धारा उत्तर समुद्र में जा मिली। विभिन्न वर्षों में विभिन्न पवित्र नदी,

कुलाचल और दिव्य स्थान हैं। भारतवर्ष में मेघों के जल की वर्षा से ही अन्नादि उत्पन्न होते हैं। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रीति से सिद्धि प्राप्त होती है। वृक्षों से जो सिद्धि प्राप्त होती है उसे वार्क्षी; स्वभाव से स्वाभाविकी, देश से देश्या, थोड़े जल से तोयोत्था, ध्यान से मानसी, उपासनादि से प्राप्त होनेवाली सिद्धि कर्मजा कहलाती है।'

'भारतवर्ष में इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण आदि विभिन्न प्रदेश हैं। भारत के उत्तर में किरात और पश्चिम में यवन रहते हैं। विस्तार उत्तर से दक्षिण तक एक हजार योजन है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य, पारिपात्र ये सात कुल पर्वत हैं तथा मन्दर, मैनाक, रैवत, श्रीपर्वत आदि सहस्रों पर्वत हैं। गंगा, सरस्वती, सिन्धु, यमुना आदि नदियाँ हिमालय से निकली हैं; वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, चर्मण्यवती, तापी, शिप्रा आदि पारिपात्र पर्वत से; शोण, महानद, नर्मदा, मन्दाकिनी, तमसा, वैतरणी आदि विन्ध्याचल से; गोदावरी, कावेरी, कृष्णवेण्या आदि सह्य-पर्वत से; ताम्रपर्णी, पुष्पजा आदि मलयाचल से; पितृसोमा, ऋषिकुल्या आदि महेन्द्र से निकली हैं। मत्स्यदेश, अश्वकूट, कुल्या, कुन्तला, काशी, कौशला, अथर्व, अर्कलिंग, मलक, वृक आदि स्थान मध्यप्रदेश कहलाते हैं। वाल्हलीक

वटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, पल्लव, चर्मखण्ड, गांधार, सौवीर, भद्र, शतद्रु, कलिंग, पारद, हारमूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय, दश मलिक प्रदेशों में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बसते हैं। कम्बोद, दरद, बर्बर, हर्षवर्द्धन, चीन, खार, बहुल, बाह्यतोनर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड़, औषध, निभद्र आदि प्रदेशों में किरातों का वास है। तामस, हंसमार्ग, काश्मीर, तुंगन, शूलिक, कुहक, ऊर्ण, दर्व आदि प्रदेशों में औदीच्य रहते हैं। अग्रारका, मुद्कर, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवंग, रंगेय, मानद, मानवर्तिक, ब्राह्मोत्तर प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध-गोमन्त, ये पूर्वीय देश हैं। पुण्ड्र, केरल, गोलांगूल, शैलूष, मूषक, कुसुम, वासक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, वैशिक्य, आटव्य, शबर, पुलिंद, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्धन, नैषिक, कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिज, वनदारक, ये देश दक्षिणीय हैं। सूर्य्यरक, कालिवल, दुर्ग, अनीकट, पुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वापद, कुरुमिन, कठाक्षर, नासिक्य, भीरुकच्छ, समाहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, अवन्त, अर्बुद, ये प्रदेश अपरान्त कहलाते हैं। सरज, करूष, केरल, उत्कल, उत्तमार्ण दशार्ण, भोज्य, किष्किंधक, कोशल, तोशल, त्रिपुरा, वैदिश,

तुम्बुर,तुम्बुल,पटय,नैषध,अन्नज,तुष्टिकार,वीरहोत्र, अवन्ती, ये प्रदेश विन्ध्य पृष्ठ पर अवस्थित माने जाते हैं। नीहार, हंस मार्ग, कुरव, गुर्गण,खस,कुन्तप्रावरण,अर्ण, दार्व, कूत्रक, त्रिगर्त, मालव,किरात,तामस आदि प्रदेश पर्वतों पर स्थित माने जाते हैं। भारत के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम में समुद्र है, तथा उत्तर में धनुष की प्रत्यंचा की तरह हिमालय पर्वत है। यही कर्म-भूमि है। यहीं पर किये हुए कर्मों के फल स्वरूप विविध उत्तम लोक और दिव्य योनियाँ प्राप्त होती हैं। देवगण भी अपने देवत्व को छोड़ कर भारत वर्ष में मनुष्य-योनि में जन्म लेने के लिए सदैव इच्छुक रहते हैं, क्योंकि भारत में नर-योनि पाकर वे ऐसे-ऐसे शुभ कर्म कर सकते हैं और ऐसी साधना में लग सकते हैं, जो देव-योनि में उन्हें दुर्लभ हैं।'

'भारत में सर्वाधार, भगवान कूर्मदेव इस प्रकार व्याप्त हैं कि उनके विभिन्न अंगों पर विभिन्न प्रदेश, ग्रह, नक्षत्र, राशि स्थित हैं। यही स्थिति वैष्णव-पाद के नाम से प्रख्यात है। स्थान,काल,पात्र के अनुसार विभिन्न ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है।'

'युगों के अनुसार मनुष्य की आयु सतयुग में चारसौ वर्ष की, त्रेता में तीन सौ, द्वापर में दो सौ और कलियुग में सौ वर्ष की होती है। देवकूट,शैलराज के पूर्व में भद्रा-

श्ववर्ष है, जिसमें श्वेतपर्ण, नील, शैवाल, कौरञ्ज, पर्णशा-लाग्र नामक पाँच कुलपर्वत हैं,एवं हजारों छोटे-छोटे अन्य पर्वत हैं; शीता, शङ्खावती आदि अगाध जलवाली नदियाँ हैं; स्त्री-पुरुष शङ्ख की तरह श्वेत वर्ण के हैं, उनमें ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है। पश्चिम में केतुमाल वर्ष है, जिसमें विशाल, कृष्णा आदि सात महान कुल-पर्वत हैं, हजारों रम-णीक छोटे पर्वत हैं, अन्तु, श्यामा आदि विशाल नदियाँ हैं, और अतुल बलवाले स्त्री-पुरुष वास करते हैं। उत्तर की ओर कुरुवर्ष है, जिसमें वृक्षों से सदा मधुर,दिव्य फलों की प्राप्ति होती है, वहाँ चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त नामक कुलपर्वत हैं, भद्रसोमा आदि महानदियाँ हैं और अनेक रम्य वन, स-रोवर आदि हैं,जहाँ वहाँ के निवासी विहार करते रहते हैं। समुद्र के बीच चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप हैं।'

'किम्पुरुष वर्ष में प्लक्ष नामक सुन्दर, सुरम्य वन है। वहाँ वाले फलों का रस पीकर अमोघ शक्ति प्राप्त करते हैं। हरिवर्ष के स्त्री-पुरुषों की कान्ति चाँदी के समान है,वे ईख का रस पीकर दीर्घ जीवन और शक्ति प्राप्त करते हैं। मेरु वर्ष के इलावर्त खण्ड में सूर्य नहीं तपने पाता, वहाँ के निवासियों की कान्ति कमल के समान है, वे जम्बू-फल का रस पीते हैं। रम्यक वर्ष में एक विचित्र अति विशाल वट-वृक्ष है जिसके फलों के रस के सेवन से वहाँ वाले वृद्धावस्था

से मुक्त रहते हैं। रम्यक वर्ष के उत्तर में हिरण्मय वर्ष है, वहाँ हिरण्यवती नदी प्रख्यात है। वहाँ वाले बड़े पराक्रमी होते हैं।'

अध्याय ६१-६७

स्वारोचिष मन्वन्तर की कथा; वरूथिनी अप्सरा; मनोरमा-विभावरी-कलावती-वनदेवी से स्वरोचि का विवाह, वनदेवी से स्वारोचिष मनु; मन्वन्तर के ऋषि आदि

क्रौष्टुकिजी ने स्वारोचिष मन्वन्तर की कथा पूछी। मार्कण्डेयजी बोले—'पूर्व काल में वारुणी नदी के तट पर वरुणास्पद नामक एक नगर में एक विद्वान, कर्मनिष्ठ, दयालु, परोपकारी ब्राह्मण रहता था। एक बार उसके मन में संसार के विभिन्न रमणीक-स्थानों को देखने की इच्छा हुई। इसी बीच में उसके यहाँ एक हृष्ट-पुष्ट अतिथि आया, जो नाना देशों में भ्रमण कर चुका था। अतिथि ने उस ब्राह्मण को अनेक सुन्दर स्थानों के वर्णन सुनाये और शीघ्रगामी एक लेप दिया; जिसके प्रभाव से मनुष्य थोड़ी देर में हज़ारों योजन पार कर सकता था। अतिथि के चले जाने पर ब्राह्मण ने अपने पैरों के तलवों में उस लेप को लगाकर हिमालय की ओर यात्रा की। देखते-देखते वह लम्बा रास्ता

थोड़ी देर में तय करके हिमालय पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ के दिव्य स्थानों को देखकर ब्राह्मण मुग्ध होगया। बर्फपर चलने से उसके तलवों का वह पाद-लेप धुल गया। बहुत देर घूमने-फिरने के बाद जब ब्राह्मण ने संध्या निकट देख, घर वापस जाने की इच्छा की तब उसे पता चला कि उस में उस प्रकार आँधी की तरह चलने की शक्ति नहीं रह गई है। वह राह भी भूल गया। थक कर व्याकुल हो वह किसी ऐसे व्यक्ति को खोजने लगा जो उसे रास्ता बतला दे और उस दुर्गम स्थान से घर पर पहुँचा दे। इसी समय वरूथिनी नामक एक अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा देख पड़ी। उससे ब्राह्मण ने रास्ता पूछा। वरूथिनी उसके रूपपर आसक्त होकर सोचने लगी—'कैसा दिव्य रूप है! कैसी ललित गति है, कैसी गंभीर मनहरण चितवन है! इसके समान रूपवान तो कोई देवता भी नहीं है। यदि यह प्रेमपूर्ण, स्निग्ध दृष्टि से मेरी ओर देख ले तो मैं अपने जन्म को धन्य समझूँ। फिर तो मेरे समान पुण्यवती स्त्री तीनों लोकों में कोई दूसरी नहीं हो सकती।'

ब्राह्मण ने उससे कहा—'हे मदिरेक्षणे! मैं सुन्दर दृश्यों के लोभ से यहाँ आ फँसा हूँ। मैं तुरंत घर जाकर नित्य-नैमित्तिक धर्म-कार्यों को संपन्न करना चाहता हूँ। प्रवास में यह सब छूट जाते हैं, इस कारण मैं एक क्षण यहाँ नहीं

ठहरना चाहता। तुम मेरे ऊपर दया करो और मुझे तुरन्त घर पहुँचा दो।'

वरूथिनी ने कामविह्वल हो मधुर-स्निग्ध कण्ठ से कहा –'ऐसा न कहो। तुम मुझे छोड़कर मत जाओ। यहाँ मेरे साथ विहार करते हुए स्वर्ग से भी अधिक सुखों को भोगो। यहाँ सभी बातें ऐसी हैं जो स्वर्ग से भी बढ़कर हैं।'

यह कहती हुई वह कलोन्मना प्रेमपीड़ा से विकल हो ब्राह्मण को अपने बाहुपाश में आबद्ध करने के लिए झपटी। ब्राह्मण ने दूर हटते हुए कहा कि मैं तेरी ऐसी स्त्री से दूर ही रहकर यज्ञ,व्रत, तप द्वारा स्वर्ग जाना चाहता हूँ, तू मुझे यहाँ से जाने का रास्ता बतला दे।

वरूथिनी–'मैं तुम्हारी प्रिया हूँ। इस रमणीक पर्वत पर मेरे साथ विहार करो और गंधर्वों, किन्नरों का गायन सुन कर अपना जीवन सफल करो।'

ब्राह्मण–'गार्हपत्य आदि तीन अग्नियाँ ही मुझे अभीष्ट हैं, अग्नि की शरण ही रमणीक है और देववाणी विस्तारिणी ही मेरी प्रिया है।'

वरूथिनी ने गिड़गिड़ाकर कहा–'मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती। दया सभी गुणों में श्रेष्ठ है, तुम मेरे ऊपर दया करो और कुछ समय तक मेरे साथ विहारकर मुझे जीवन-दान दो। मुझे मरने से बचाकर तुम अक्षय

पुण्य के भागी बनो।'

ब्राह्मण-'मैं तेरे साथ विहार कर अपना जीवन नष्ट नहीं कर सकता। ब्राह्मण का जीवन बड़ा कठोर होता है। वह विलास में नहीं पड़ सकता।'

यह कह ब्राह्मण ने अग्निदेव की स्तुति-आराधना प्रारंभ की। अग्नि के दिव्य तेज ने उसके शरीर में प्रवेशकर उसकी कान्ति को सौ गुना बढ़ा दिया। उसका रूप और भी अधिक मनोहर होगया। अप्सरा और भी अधिक उसके लिए तड़पने लगी। उसने अनेक उपाय किये, किन्तु ब्राह्मण उसकी ओर आकृष्ट न हुआ, वह वहाँ से चला गया। उसके जाने पर अप्सरा बहुत व्याकुल हुई। वह प्रलाप करती हुई विरह-व्यथा से पीड़ित हो रोदन करने और अपने को धिक्कारने लगी।

उसी वन में कलि नामक एक गंधर्व था। वह वरूथिनी पर आसक्त था। पर वरूथिनी ने अनेक बार उसका अपमान कर उसे अपने पास से हटा दिया था। कलि ने जब वरूथिनी को ब्राह्मण पर मुग्ध होकर तिरस्कृत होते देखा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। ब्राह्मण के चले जाने पर उसने वरूथिनी को विलाप करते देखा, तो उसे विश्वास होगया कि वह बिना ब्राह्मण के जीवित नहीं रह सकती। उसने अपनी अभिलाषा की पूर्त्ति का यह अच्छा अवसर देखा।

कुछ समय बाद उसने अपना रूप उसी ब्राह्मण का-सा बना लिया और वह वन के उसी भाग में घूमने लगा जहाँ वरूथिनी तड़प रही थी। अप्सरा उसे देखते ही उसे ब्राह्मण समझ, दौड़ आई और अनुनय-विनयकर विहार करने के लिए फुसलाने लगी। कलि ने बड़े नखरों के बाद इस शर्त पर उससे विहार करना स्वीकार किया कि मैं जो कहूँगा उसे मानना पड़ेगा। अप्सरा ने उसकी प्रत्येक बात मानने की प्रतिज्ञा की। कलि उसके साथ विहार करने लगा। जब वह उसके साथ रमण करता तब उससे आँखें बन्द करा लेता। अप्सरा हर बार आँखें बन्दकर ब्राह्मण के उस दिव्य, तेजस्वी रूप का ध्यान करती जब उसके शरीर में अग्निदेव के प्रवेश करने पर अलौकिक तेज एकत्र हुआ था। कुछ समय बाद उसके एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक की कान्ति सूर्य के समान थी, इस कारण उसका नाम स्वरोचि पड़ा।

"स्वरोचि धीरे-धीरे बढ़कर चन्द्रमा के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी युवा हो गया। उसने सभी विद्याओं एवं अस्त्रशस्त्रों को प्राप्तकर लिया। एकबार वह पर्वत प्रदेश में विचरण कर रहा था। इस बीच में एक सुन्दरी कन्या ने वहाँ जाकर भय विह्वल स्वर में उससे रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वरोचि ने उसे अभयदान

देकर भय का कारण पूछा।

कन्या बोली—'मैं इन्दीवराक्ष नामक विद्याधर की पुत्री मनोरमा हूँ। मैं अपनी सखी विभावरी और कलावती के साथ एकबार कैलाश पर्वत पर घूम रही थी। वहाँ हमें एक अत्यन्त दुर्बल और कुरूप ऋषि देख पड़े। उन्हें देखकर हमें हँसी आगई। मुझे हँसते देख उन्होंने शाप दिया कि तुझे शीघ्र एक राक्षस भक्षण करेगा। शापको सुनकर मेरी सखियों ने उनसे कहा कि तुम्हारे ब्राह्मणत्व और तप को धिक्कार है। जान पड़ता है तुम क्रोध से ही क्षीण हो रहे हो। क्षमा वान होना ही ब्राह्मणत्व है और क्रोध को रोकना ही तप। ऋषिय ने कुपित होकर मेरी सखियों को भी शाप दिया। उनमें से एक को कुष्ठ होगया और दूसरी को क्षय। मेरे पीछे एक घोर राक्षस लगगया, जो आज तीन दिन से मेरे पीछे गर्जन-तर्जन करता हुआ मुझे खाने के लिए दौड़ रहा है। आप उससे मेरी रक्षा कीजिये। मेरे पास अस्त्रों के समूह का हृद है। इसे पूर्वकाल में स्वयं रुद्र भगवान ने स्वायंभुव मनु को दिया था। उन्होंने उसे सिद्धवर्य वशिष्ठजी को दिया। उन्होंने मेरे नाना चित्रायुध को दिया। उन्होंने मेरे पिता को दिया। पिता ने छुटपन में ही इसे मुझे दे दिया था। आप इसे लें और मेरी रक्षा उस दुष्ट राक्षस से करें। मैं आपकी शरण में हूँ।'

यह कहकर उसने रहस्य-मंत्र-उपसंहार-सहित उस अस्त्र-हृद को स्वरोचि को दे दिया। इसी समय वह भयंकर राक्षस गर्जन करता हुआ आया और बोला कि तेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता, तू इधर आ,मैं तुझे खाऊँ। स्वरोचि ने अस्त्र को सम्भाला, किन्तु मुनि के वचन को सत्य करने के लिए मनोरमा को राक्षस के द्वारा ग्रसे जाने का अवसर दे दिया। राक्षस ने मनोरमा को पकड़ लिया और खाना चाहा। इसी समय स्वरोचि ने चण्ड नामक अत्यन्त भीषण अस्त्र को छोड़ दिया। विकराल अस्त्र को आता देख राक्षस घबरा गया। उसने मनोरमा को छोड़ दिया और गिड़गिड़ाकर स्वरोचि से कहा कि आप अपने इस अस्त्र को शान्त करें। मैं राक्षस नहीं हूँ, मैं तो मनोरमा का पिता हूँ। शाप के कारण मुझे राक्षस होना पड़ा था। आपने मेरा बड़ा उपकार किया। आपके इस प्रचण्ड अस्त्र के कारण शाप से छूट गया।

स्वरोचि ने अपने अस्त्र को शान्त किया और राक्षस से शाप का कारण पूछा। राक्षस बोला—'मेरा नाम इन्दीवराक्ष है। मैं विद्याधर हूँ। ब्रह्ममित्र नामक मुनि ने अष्टांग-सहित आयुर्वेद और तेरह अधिकार सहित अथर्ववेद का अध्ययन किया। मैंने उनसे अनेक बार प्रार्थना की कि आप मुझे आयुर्वेद का अध्ययन करा दीजिये। किन्तु बहुत अनु-

नय-विनय-सेवा करने पर भी उन्होंने आयुर्वेद की शिक्षा नहीं दी। विवश होकर गुप्त रूप से अन्तर्धान होकर उस समय मैं उस विद्या को पढ़ने लगा जब वे अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। इस प्रकार मुनि के बिना जाने ही मैंने सम्पूर्ण आयुर्वेद को प्राप्त कर लिया। जब ऋषि को इसका पता चला तो वे बहुत कुपित हुए। मैं उन्हें देख कर खूब ठठा कर हँसा। उन्होंने क्रोधकर शाप दिया कि तू राक्षस होजा और अपनी कन्या को खा। शाप से मैं बहुत भयभीत हुआ। बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा कि जब कोई तीक्ष्ण अस्त्र से तेरे ऊपर प्रहार करेगा तब तेरा शाप दूर हो जायगा।'

इतना कहते-कहते वह अपने पूर्व रूप को प्राप्त होगया और आयुर्वेद सहित अपनी कन्या को स्वरोचि को देने लगा। कन्या ने कहा कि मैं अपनी पीड़िता सखियों को छोड़कर भोग-विलास में नहीं फँसना चाहती। स्वरोचि ने कहा कि आयुर्वेद के प्रभाव से मैं उन दोनों को मुक्त कर दूँगा, शोक, सन्ताप का कोई कारण नहीं है। मनोरमा विवाह करने के लिए राजी होगई। विद्याधर ने उसका विवाह स्वरोचि से कर दिया। फिर बहुत-सा धन, विद्याएँ देने के अनन्तर वह गन्धर्व लोक को चला गया। स्वरोचि ने उत्तम-उत्तम औषधियों के प्रयोग से मनोरमा की सखियों को

नीरोग करदिया। एक सखीका नाम विभावरी था, वह मन्दार विद्याधर की पुत्री थी। उसने स्वरोचि को वह विद्या बतला दी जिससे सब जीवोंकी बोली समझमें आजाती थी। उसकी इच्छा जानकर स्वरोचि ने उसके साथ विवाह कर लिया। दूसरी का नाम कलावती था। वह पारमुनि और पुंजिकस्तना नामक अप्सरा की कन्या थी। उसने स्वरोचि को पद्मिनी नामक ऐसी विद्या दी जिसके कारण सब निधियाँ स्वरोचि के वश में होगईं। कलावती ने भी अपनी सखी विभावरी की तरह ही अपने शरीर को स्वरोचि को अर्पित कर दिया। स्वरोचि ने उसके साथ भी विवाह कर लिया। अपनी तीनों पत्नियों के साथ वे दिव्य-रमणीक स्थानों में नाना-प्रकार के भोग भोगने लगे। पद्मिनी विद्या के कारण उन्हें सब तरह के देव-दुर्लभ पदार्थ प्राप्त थे। कुछ काल बाद एक हंसिनी ने उनके ललित-बिहार को देखकर एक चक्रवाकी से कहा कि स्वरोचि कितना पुण्यवान है जो यह यौवनावस्था में प्रेयसियों के साथ इस प्रकार के देव-दुर्लभ भोगों को भोगता है। संसार में क्वचित ही ऐसे स्त्री-पुरुष मिलते हैं जिनमें आपस में दाम्पत्य प्रेम हो और जो एक दूसरे के गुणों का आदर करते हुए प्रीतिपूर्वक निर्वाह करते हों। चक्रवाकी ने उत्तर दिया कि स्वरोचि तो कदापि प्रशंसा के योग्य नहीं है। वह तीन स्त्रियों के साथ विहार करता हुआ लज्जा

को प्राप्त नहीं होता । वह अपनी तीनों स्त्रियों से बराबर प्रेम कर ही नहीं सकता । उसके लिए तो यह सब विनोद मात्र है । जब वह एक स्त्री से प्रेम सम्भाषण और विहार करता है तो इसे उसकी दूसरी स्त्रियाँ कैसे सहन करती हैं । यदि उनमें अगाढ़ प्रेम है तो वे शरीर क्यों नहीं त्याग देतीं । इन तीनों स्त्रियों ने तो विद्यारूपी दान दे-देकर स्वरोचि को खरीद लिया है । वह तो उनका क्रीतदास है । एक पुरुष का प्रेम अनेक स्त्रियों में बराबर हो ही नहीं सकता । प्रेम तो वही है जो केवल एक स्त्री और केवल एक ही पुरुष में आपस में हो ।

स्वरोचि सभी जीव-जन्तुओं की बोली समझ लेते थे । चक्रवाकी के वचन सुनकर उन्हें बड़ी लज्जा मालूम हुई । किन्तु वे अपनी किसी भी स्त्री को छोड़ न सके । कुछ काल बाद एक वन में विहार करते समय उन्होंने एक मृगी को एक मृग के पीछे-पीछे व्याकुल हो घूमते देखा । मृगी मृग को अपने सींगों से खुजलाती, अपनी जीभ से उसे चाटती और नाना प्रकार से उसे अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा में लगी हुई थी । मृग ने उसे झिड़ककर कहा कि तू लज्जा छोड़ चुकी है इस कारण यहाँ से चली जा । जो स्त्री अनेक पुरुषों से और जो पुरुष अनेक स्त्रियों से विहार करता है उसके सभी शुभकर्म नष्ट हो जाते

हैं और उसकी बड़ी निन्दा और दुर्दशा होती है। मैं स्वरोचि नहीं हूँ कि अनेक स्त्रियों के साथ विहार में आसक्त हो सकूँ। तू किसी ऐसे मृग को ढूँढ़ जो स्वरोचि की तरह अनेक स्त्रियों में आसक्ति रखनेवाला हो।

स्वरोचि ने यह सब बातें सुनीं; उन्हें बहुत ही अधिक ग्लानि हुई, किन्तु बहुत चेष्टा करने पर भी वे अपनी स्त्रियों को न छोड़ सके। कुछ काल बाद प्रत्येक स्त्री से उन्हें एक-एक पुत्र प्राप्त हुआ। यथासमय उनके बड़े होने पर स्वरोचि ने मनोरमा के पुत्र विजय को पूर्व दिशा की ओर कामरूप नामक नगर बसाकर दे दिया;उत्तर दिशाकी ओर नन्दवती नामक नगरी स्थापित कर विभावरी के पुत्र मेरु-नन्द को वहाँ का राजा बनाया,और दक्षिण के तालनामक नगर की राजगद्दी पर कलावती के पुत्र प्रभाव को बैठाला। कुछ समय बाद वे वनमें शिकार खेलने के लिए गए। वहाँ वे एक शूकर को लक्ष्यकर बाण छोड़ने ही वाले थे कि एक मृगीने-आकर अपने शरीरको उनके बाण के सामने करदिया और कहा कि आप व्यर्थ में उस शूकर पर क्यों बाण छोड़ते हैं। आप इसी बाण से मुझे मार डालिए क्योंकि मेरा जीवन भारी हो रहा है, मैं जिस व्यक्ति को चाहती हूँ वह दूसरी स्त्री पर आसक्त है, इस कारण मेरा मरना ही उत्तम है। स्वरोचि ने पूछा कि वह कौन है जिसके लिए तुम

प्राण तक त्यागने के लिए तैयार हो। मृगी ने कहा कि मैं आपही को चाहती हूँ, बिना आपके मैं जीवित नहीं रह सकती। यदि आप अपनी स्त्री बनाकर मुझसे विहार करें तो मेरा जीवन बच सकता है। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि तुम तो मृगी हो, मैं तुम्हारे साथ विहार कैसे कर सकता हूँ। मृगी ने कहा कि मुझे वरदान मिला है, तुम जिस रूप की कल्पना करके मुझे अपने हृदय से लगाओगे, मेरा वही रूप हो जायगा।

स्वरोचि ने मृगी का आलिंगन किया। वह तुरन्त दिव्य कान्ति और मनोहर रूपवाली अप्सरा हो गई। स्वरोचि को बड़ा आश्चर्य हुआ। स्त्री ने सलज्ज भाव से कहा-'मैं इस प्रदेश की वनदेवी हूँ। देवताओं के प्रार्थना करने पर मैंने आपका सहयोग स्वीकार किया है। ब्रह्माजी का विधान है कि आपके सहवास से मैं एक मनु को उत्पन्न करूँ, जो लोकों का पालन करेगा।'

स्वरोचि ने वनदेवी से विहार किया। कुछ समय बाद उनके एक दिव्य बालक ने जन्म लिया। उसके तेज को देखकर स्वरोचि ने उसका नाम द्युतिमान रक्खा। अलौकिक तेज के कारण आगे चलकर वही स्वारोचिष मनु के नाम से विख्यात हुए।

स्वरोचि वृद्ध होने पर भी अपने पुत्र-स्त्री में आसक्त

रहे। एकबार वन में उन्हें हंस-हंसनी की वार्ता सुनने को मिली। हंसनी से हंस कह रहा था कि अब तुम मुझे छोड़ दो, मैं तप करके अपने परलोक को बनाना चाहता हूँ। हंसनी ने गिड़गिड़ाकर कहा—'अभी तो भोग का समय है। और भोग के लिए कौन-सा समय उपयुक्त नहीं होता? समस्त संसार ही भोगात्मक है। भोग के लिए ही तपस्वी ब्राह्मण संयम-नियम का पालनकर यज्ञ, तप करते हैं। भविष्य के सुख के भोगों के विचार से ही ज्ञानी व्यक्ति दान, धर्म, तप, त्याग में लगे रहते हैं। यदि सुखोपभोग की कामना न हो तो लोग ऐसे धार्मिक कृत्य करें ही क्यों! सभी कर्म भोगों के लिए ही किये जाते हैं। तब फिर हम भोगों से क्यों विरत हों?'

हंस—'जो धार्मिक क्रियाएँ भोगों के लिए की जाती हैं वे निकृष्ट होती हैं। यथार्थ धर्म तो है परमपद की प्राप्ति। वहाँ भोग की वासना ही शान्त हो जाती है। जो सुखोपभोग के लिए जप, तप करते हैं अथवा स्त्री-पुत्र-धन में लिप्त रहते हैं वे वन के कीचड़ में फँसे हुए हाथी के समान हैं। स्वरोचि की तरह उनका किसी प्रकार भी उद्धार नहीं हो सकता। स्वरोचि विवेकहीन होकर स्त्री-पुत्रों के मोह में फँसा हुआ व्यर्थ में जीवन बिता रहा है। मैं तो भोगों से निवृत होकर मोक्ष के साधन में लगूँगा।'

'हंस के वचनों से स्वरोचि को आत्म-ज्ञान हो गया। वे स्त्रियों को लेकर वन में तप करने चले गये। कुछ काल बीतने पर योग-साधन द्वारा कर्मबन्धन से छूटकर वे अमल लोकों को प्राप्त हुए।'

द्युतिमान प्रजापति को ब्रह्माजी ने स्वारोचिष नामक मनु की पदवी से विभूषित किया। वे लोकों का पालन करने लगे। स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषित नामक देवता, विपश्चिति नामक इन्द्र; ऊर्ज्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर, आर्व्वपीर नामक सप्तर्षि; चैत्र, किम्पुरुष आदि मनु-पुत्र हुए। पूरे मन्वन्तर काल तक स्वारोचिष ने प्रजा का पालन किया।'

अध्याय ६८

पद्मिनी-विद्या; अष्ट निधियाँ

क्रौष्टुकिजी के प्रश्न करने पर मार्कण्डेयजी बोले—'पद्मिनी नामक विद्या से सभी उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है। देवता स्वयं श्रीलक्ष्मीजी हैं और पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील, शंख नामक आठ निधियाँ आधार भूत हैं। जिसे सतोगुण युक्त ऋद्धियाँ

प्राप्त हो जाती हैं उसे इन आठों निधियों पर भी स्वामित्व मिल जाता है। पूर्वकाल में पद्म नामक निधि मय दानव के यहाँ अवस्थित थी और मय के वंशजों के पास भी बराबर बनी रही। पद्मनिधि का आधार सतोगुण है। इसके प्रभाव से सोना-चाँदी की प्राप्ति होती है और इन्हीं धातुओं के व्यापार से लाभ होता है। इस निधि का जिस पर प्रभाव होता है वह यज्ञ करता, दान देता और देव-स्थानों को बनवाता है। दूसरी निधि महापद्म है। इसके प्रभावसे पद्मराग,मोती,मूँगाआदि की प्राप्ति और व्यापार होता है। यह निधि मनुष्य के कई पुश्तों तक चलती है। तीसरी निधि मकर है, और वह तमोगुण प्रधान है। इसके प्रभाव से मनुष्य धनुषबाण, ढाल-तलवार धारण करता, इन्हीं की बिक्री करता, राजा से मैत्री करता है। यह निधि केवल एक पुश्त तक ही चलती है। चौथी निधि कच्छप है, जो तमोगुणी है। इसके प्रभाव से मनुष्य सब ओर से मनको खींचकर धन-संग्रह में लग जाता है। उसे किसी का विश्वास नहीं होता, वह केवल धन-संग्रह करने में ही आनन्द पाता है, किन्तु उस धन को न तो स्वयं भोगता और न किसी दूसरे को ही देता। धन-नाश के भय से सदा व्याकुल रहता है और सदा धन को पृथ्वी में गाड़ता जाता है। यह निधि केवल एक मनुष्य तक सीमित

रहती है। पाँचवी निधि मुकुन्द है, जो रजोगुण प्रधान है। इसके प्रभाव के कारण मनुष्य वीणा, वेणु, मृदंग आदि का संग्रह करता है; गायकों और नर्तकों को धन देता है; सूत, वन्दीजन, चारण, नट आदि के साथ भोजन करता है, और कुल्टा स्त्रियों एवं वेश्यागामी पुरुषों से मैत्री रखता है। यह निधि केवल एक पुश्त तक चलती है। छठवीं निधि नन्द है, जो रजोगुण-तमोगुण प्रधान है। इसके प्रभाव से धातु, रत्न, धन का संग्रह होता है; मनुष्य स्वजनों, अतिथियों, अभ्यागतों का पालन करता है; सदा नम्र रहता है; सुन्दर स्त्रियों द्वारा पूजा जाता है। यह निधि सात पुश्तों तक चलती है। सातवीं निधि नील है। यह सतोगुण-रजोगुण प्रधान है; इसके प्रभाव से मनुष्य सत-संग करता है; वस्त्र, कपास, फल, पुष्प, मोती-मूँगा, शङ्ख, काष्ठ आदि का संग्रह और व्यापार करता है; तालाब, बा-वड़ी बनवाता, बाँध बँधवाता है; बाग-वृक्ष लगवाता है, एवं उत्तम-उत्तम भोगों को भोगता है। यह निधि तीन पुश्त तक चलती है। आठवीं निधि शङ्ख है। इसके प्रभाव से म-नुष्य में गुणों की वृद्धि होती है, पराक्रम और पुरुषार्थ से सदा द्रव्योपार्जन एवं लाभ होता रहता है। इस निधि के प्रभाववाला मनुष्य केवल अपने ऊपर ही धन व्यय करता और उत्तम-उत्तम भोगों को भोगता है। वह भाई, स्त्री, पुत्र,

पिता तक को कुछ नहीं देता।'

'ये निधियाँ अर्थ-देवता कहलाती हैं। पद्मिनी विद्या के प्रभाव से आठों निधियों की प्राप्ति हो सकती है।'

—:o:—

अध्याय ६६-७२

उत्तम एवं औत्तम मन्वन्तर का वर्णन; स्त्री का माहात्म्य;

क्रौष्टुकिजी के प्रश्न करने पर मार्कण्डेयजी बोले 'राजा उत्तानपाद की सुरुचि रानी से उत्तम नामक पुत्र हुआ। यथा समय उत्तम राजगद्दी पर बैठे और दुष्टों के लिये यम और सज्जनों के लिये चन्द्रमा के समान बनकर राज करने लगे। उनका विवाह बहुला नामक एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री से हुआ। वह अपनी स्त्री के ऊपर इतना आसक्त था कि रात-दिन उसी को देखा करता था। वह बहुला की वाणी सुनते ही गद्‌गद् होजाता था, उसके मुख को देखते ही तन्मय होजाता। वह सदा उसे प्रसन्न करने की चेष्टा किया करता, किन्तु बहुला कभी भूलकर भी उसके प्रति प्रसन्नता और अनुराग प्रकट न करती। एक बार मंत्री, सामन्त आदि की उपस्थिति में कुशल गायकों का गायन होरहा था। सबके समने राजा ने रत्न-जटित पात्र में दिव्य

सुरा को भरकर प्रेम पूर्वक आदर सहित बहुला को देना चाहा, किन्तु बहुला ने भरी सभा में उसका निरादर किया, पान-पात्र को छुवा तक नहीं। राजा अपमान से पागल हो उठा। उसने स्त्री को देश से निकालकर घोर बनमें छुड़वा दिया। बहुला ने क्रोधित होकर निश्चय किया कि मैं अब कभी उस दुष्टके पास न जाऊँगी। राजाने क्रोध में आकर बहुला को त्याग तो दिया किन्तु उसके विना वह अत्यन्त व्याकुल रहने लगा। वह बहुला का ध्यान करता हुआ धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

एकबार एक ब्राह्मण ने आकर उत्तम से कहा—'रात्रि के समय मेरे द्वार को खोलकर किसी ने मेरी सोती हुई स्त्री का हरन किया है। आप उसे खोज कर वापस ला दीजिए। आप करके रूप में हमारी आय का छठवाँ भाग लेते हैं, इस कारण आपका धर्म हो जाता है कि आप हमारी रक्षा करें और हमारे सभी कष्टों को दूर करें। राजा को कर देकर प्रजा उसके बलपर निश्चिन्त हो रातको सोती है।'

राजा—'मैं तुम्हारी स्त्री को नहीं पहचानता, यह भी नहीं जानता कि उसे कौन लेगया है और वह कैसी है?'

ब्राह्मण—'मेरी स्त्री बहुत ही कुरूपा है, उसकी आँखें छोटी-छोटी और कठोर हैं, और मुख की आकृति बहुत ही भयंकर है, स्वर कर्कश है, आकार लम्बा है, भुजाएँ नन्हीं-

नन्हीं हैं, स्वभाव दुष्ट और उग्र है, अवस्था ढल चुकी है।'

'राजा ने उसे बहुत समझाया कि ऐसी स्त्री के साथ कोई भी पुरुष सुखी नहीं रह सकता, इस कारण तुम उसकी चिन्ता छोड़ दो। उसका न रहना ही तुम्हारे लिए सुखकर है। ब्राह्मण बोला—'वेद-शास्त्र की आज्ञा है कि स्त्री की सदा रक्षा करना चाहिए, क्योंकि स्त्री से ही पुत्र की उत्पत्ति होती है और पुत्र के द्वारा परलोक में नरक से रक्षा एवं इसलोक में मनुष्य का भरण-पोषण होता है। स्त्री की रक्षा न करने से वर्णसंकर सन्तान की उत्पत्ति होती है, जिससे मनुष्य को पितरों सहित नरक में जाना पड़ता है। बिना स्त्री के नित्य-नैमित्यिक धार्मिक क्रियाएँ भी नहीं सध सकतीं। इस कारण मनुष्य के धर्म और उसकी साधना में भी व्याघात पड़ता है। मेरी स्त्री से जो सन्तान होगी उससे आपको राज-कर की प्राप्ति होगी, इस कारण आपका कर्तव्य है कि आप मेरी स्त्री को ढूँढ कर ला दें।'

ब्राह्मण के कहने से राजा उसकी स्त्री को खोजने के लिए रथ पर बैठकर चल पड़े। बहुत समय तक इधर-उधर खोजने के बाद वे एक आश्रम में पहुँचे, वहाँ उन्हें एक अत्यन्त तेजस्वी ऋषि बैठे देख पड़े। राजा रथ से उतरकर उनके पास गए और नम्रता पूर्वक प्रणामकर एक ओर बैठ गए। ऋषि ने अपने शिष्य से अर्घ्य देने के

लिए कहा। शिष्य ने राजा को देखकर ऋषि से कहा कि आप फिर से विचार कर आज्ञा दें कि अर्घ्य दिया जाय या नहीं। ऋषि ने राजा की ओर देखकर विचार किया और अर्घ्य के लिए निषेध कर दिया। किन्तु उन्होंने राजा का बड़ा आदर-सत्कार एवं सम्मान किया और प्रीति पूर्वक आने का कारण पूछा। राजा ने सब बातें बतलाकर उनसे नम्रता पूर्वक पूछा कि आपने मेरे लिए अर्घ्य क्यों नहीं दिया। ऋषि बोले—'आपने अपनी पत्नी को वन में छोड़ दिया है, इस कारण आपके सभी धार्मिक-कृत्य बन्द हो गए हैं। शास्त्रों की आज्ञा है कि जो मनुष्य एक पक्ष तक अपने नित्य-नैमित्यिक कर्मों को न करे उसका स्पर्श तक न करना चाहिए। आप तो एक वर्ष से स्त्री से अलग रहते हुए धार्मिक कृत्यों से शून्य हैं। इस कारण आप अर्घ्य पाने के योग्य नहीं हैं। स्त्री चाहे उत्तम स्वभाव वाली हो अथवा निकृष्ट, उसका पालन, उसकी रक्षा तो आवश्यक ही है। राजा का धर्म है कि वह दूसरे स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने धर्म से विचलित न होने दे। किन्तु जब स्वयं राजा ही धर्म से विचलित हो जायगा तो फिर धर्म की स्थापना कैसे होगी!'

'ऋषि की बात सुनकर राजा बहुत लज्जित हुए। ऋषि ने उन्हें समझा,बुझाकर ब्राह्मण की स्त्री के उद्धार के लिए

उत्पलावर्तक वन में भेजा। राजा को उस वन में एक अत्यन्त भीषण आकृतिवाली स्त्री देख पड़ी। राजा के पूछने पर उसने बतलाया कि मैं अतिरात्र की पुत्री और विशालपुत्र नामक ब्राह्मण की स्त्री हूँ। मुझे आद्रि का पुत्र वलाक नामक राक्षक धोखे से हरण कर लाया है। किन्तु न तो वह मुझे खाता ही है और न मेरे साथ विहार ही करता है। राजा ने उस राक्षस को खोजना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय बाद वह एक ओर से आया और नम्रता पूर्वक प्रणाम करने के अनन्तर अर्घ्य देता हुआ राजा से बोला—'आपने मेरे वन में आकर मुझे कृतार्थ किया। आप जो भी आज्ञा दें उसका मैं सहर्ष पालन करूँगा। मैं मनुष्यों का भक्षण नहीं करता। मेरी जाति में अनेक कन्याएँ अप्सराओं से भी बढ़कर सुन्दरी हैं इस कारण, किसी दूसरे की कुरूपा स्त्री की ओर भी मैं आकृष्ट नहीं हो सकता। मैं तो उस ब्राह्मण की इस स्त्री को केवल इस-लिए लाया हूँ कि स्त्री के न रहने पर वह ब्राह्मण अपनी धार्मिक क्रियाओं से भ्रष्ट हो जाय और यज्ञ आदि में भाग न ले सके। इसका कारण है। वह ब्राह्मण मंत्रज्ञ है। वह जिसी यज्ञ में जाता था उसी में रक्षोघ्न मन्त्रोंद्वारा मेरा उच्चाटन कर देता था और इस प्रकार यज्ञ-भाग से वंचित होकर मैं भूखा रह जाता था। अब स्त्री के न रहने पर

वह यज्ञ में भाग्य लेने योग्य ही न रह जायगा और इस प्रकार मैं यज्ञ में भाग पा सकूँगा।'

राजा ने अनेक प्रकार के विचारों के अनन्तर उस राक्षस से कहा कि तुम इस ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव को भक्षण कर जाओ जिसमें यह सुशील, विनम्र, मृदु स्वभाव वाली हो जाय। राक्षस ने अपनी राक्षसी-माया से उसके शरीर में प्रवेश किया और उसके दुष्ट स्वभाव को नष्ट कर डाला। फिर राजा ने उससे कहा कि तुम इसे इसके पति के पास पहुँचा आओ। राक्षस राजा की आज्ञा को मानकर उस ब्राह्मणी को उसके पति के पास पहुँचा आया। राजाने राक्षस से मित्रता करली। राक्षस ने राजा से कहा कि जब आप को कोई आवश्यकता पड़े तो मुझे स्मरण कर लीजियेगा, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। उससे विदा होकर राजा उन्हीं ऋषि के आश्रम में गए और सब बातें बतलाकर पूछा कि मैं अब क्या करूँ। ऋषि बोले-'दिव्य-दृष्टि के कारण मुझे आपकी सभी बातें मालूम हैं। मनुष्य के धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि का प्रबल कारण स्त्री ही है। इस कारण मनुष्य को सदा अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। आपकी स्त्री जिस समय अनाथ की तरह वन में घूम रही थी उस समय नागराज संयोगवश वहाँ आये और उसे दुःखी देखकर अपने साथ वे उसे

रसातल को लेगए। वहाँ नागराज ने अपनी नन्दा नामक पुत्री से कहा कि तुम इस सुन्दरी को महल के गुप्त स्थान में लेजाकर रक्खो, यह तुम्हारी दूसरी माता होगी। नन्दा ने अपने पिता की बात का कोई उत्तर न दिया। नागराज ने क्रोधकर उसे शाप दिया कि तू गूँगी होजा। शाप के कारण नन्दा गूँगी हो गई और बहुला के साथ गुप्त स्थान में रहने लगी। आपकी स्त्री इस समय भी पवित्र और सुखी है। कुछ अनिष्ट ग्रहों के कारण वह आपसे विरक्त रहती थी, किन्तु उपाय करने से उन कुग्रहों की शान्ति हो जायगी और आप दोनों में आपस में बहुत ही अधिक प्रीति हो जायगी।'

मुनि से विदा होकर राजा अपनी राजधानी में लौट आये। जिस ब्राह्मण की पत्नी को उन्होंने वापस लादिया था वह बड़ी प्रसन्नता से मिला। वह अपनी पत्नी के उत्तम स्वभाव से बहुत सन्तुष्ट था। उसने राजा को अनेक प्रकार से समझाया कि आप किसी राजकुमारी के साथ दूसरा विवाह कर लीजिये, किन्तु राजा किसी भी दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने के लिए तैयार न हुए। उन्होंने ब्राह्मण से अपनी पत्नी के सम्बन्ध की सब बातें बतलादीं। ब्राह्मण ने उनसे कहा कि मित्र-विन्दा नामक यज्ञ करने से आपकी पत्नी आपके साथ उसी तरह से प्रेम करने लगेगी

जिस तरह आप उससे करते हैं। राजा ने आवश्यक सामग्री एकत्र कर उस ब्राह्मण से सात बार मित्र-विन्दा नामक यज्ञ कराया। फिर राक्षस का स्मरण किया। वह तुरंत प्रकट होगया। राजाने उसके द्वारा अपनी स्त्री को रसातल से मँगवा लिया। राजा को देखते ही बहुला ने प्रीतिपूर्वक उनसे क्षमा माँगी। दोनों एक दूसरे को प्रेम करते हुए सुख से रहने लगे। रानी ने राजा से कहा कि यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरी सखी नन्दा का शाप दूर होजाय और वह बोलने लगे। राजाने ब्राह्मण से उपाय करने के लिये कहा। ब्रह्मण नें सारस्वत-इष्ट नामक यज्ञ करके वाग्देवी को प्रसन्न करलिया। सरस्वतीजी की कृपासे नन्दाका शाप दूर होगया,वह फिर बोलने लगी। गर्गजी से जब उसे यह मालूम हुआ कि उसकी सखी बहुला के प्रयत्न से उसे फिर से वाणी प्राप्त हुई है, तो वह राजा के महलों में आई और वर दिया कि तुम्हारे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो जो मनु की पदवी प्राप्ति करे।'

कुछ समय बाद उत्तम के एक अत्यन्त दिव्य शक्तियों वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषियों ने उसका नाम औत्तम रक्खा। यथा समय औत्तम ने चन्द्रमा के समान बढ़कर राज्य और मनुपद प्राप्त किया। वे औत्तम मनु के नाम से प्रख्यात हुए और एक मन्वन्तर तक लोक-कल्याण करते

हुए राज्य भोगते रहे। औत्तम मन्वन्तर में स्वधामान, सत्य, शिव, प्रतर्दन, वशवर्ती नामक देवता; सुशान्ति नामक इन्द्र; अज, परशुचि, दिव्य नामक मनु-पुत्र और वशिष्ट-पुत्र सप्तर्षि हुए। यह तीसरे मन्वन्तर की कथा है। आगे तामस नामक मन्वन्तर का वर्णन है।

अध्याय ७४

तामस मन्वन्तर; सिद्ध-वीर्य मुनि, मृगी से मनु

मार्कण्डेयजी बोले—'पूर्वकाल में स्वराष्ट्र नामक एक बड़ा धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिवान राजा राज्य करता था। सूर्य भगवान ने उसके यज्ञों से प्रसन्न होकर उसे बहुत बड़ी आयु दी। उसके सौ रानियाँ थीं। किन्तु वे एक-एक करके राजा के सामने मर गयीं। धीरे-धीरे राजा के मंत्री, सेवक आदि भी मर गये इससे राजा को बड़ा दुःख हुआ। दुःख के कारण उसका मन किसी काम में न लगता था। राज्य में गड़बड़ी फैल गई। विमर्द नामक एक दूसरे राजा ने चढ़ाई की और स्वराष्ट्र से उसका राज्य छीन लिया। राजा स्वराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ। वह विरक्त होकर वितस्ता नदी के तीर जाकर तप करने लगा। घोर तप करते-करते जब बहुत समय व्यतीत होगया तब एकबार

इतनी अधिक वर्षा हुई कि चारों ओर जल-ही-जल भर गया। भीषण बूड़ा आगया और काले-काले मेघों के घिरे रहने के कारण चारों ओर ऐसा अन्धकार फैल गया कि हाथ फैलाने पर भी न देख पड़ता था। राजा उस जल के तीव्र प्रवाह में पड़कर बह गये। देर तक डूबने-उतराने के बाद उसी प्रवाह में उन्हें एक मृगी मिली। राजा ने अपनी रक्षा के लिए मृगी की पूँछ पकड़ ली और उसके सहारे किसी प्रकार जल के प्रवाह से और किनारे के कीचड़ के बाहर निकल आये। मृगी उन्हें खींचती हुई एक दूसरे वन में ले गई, जहाँ जल और वर्षा से उस प्रकार का कष्ट न था। राजा को उस मृगी में आसक्ति हो गई। वे कामा-तुर होकर उसकी पीठ आदि सहलाने लगे। राजा के भाव को समझकर मृगी ने उनसे कहा कि आप यह सब चेष्टायें क्यों करते हैं? इससे आपका तप नष्ट हो जायगा। किन्तु एक बात आप समझ लें कि आपने अनुचित स्थान में चित्त को नहीं लगाया है। और मैं आपके लिए अगम्या भी नहीं हूँ। किन्तु आपके और मेरे सहवास में लोल विघ्न कर रहा है।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मृगी से पूछा कि तुम मनुष्य की तरह कैसे बोलती हो और यह विघ्न डालनेवाला लोल कौन है? मृगी ने नम्रता पूर्वक कहा—'मैं

उस जन्म में राजा दृढ़धन्वा की पुत्री उत्पलावती थी। मैं आपकी सभी रानियों में श्रेष्ठ थी। आपसे विवाह होने के पहले लड़कपन में एक बार मैं उपवन में भ्रमण कर रही थी। संयोगवश एक मृगी मेरे पास आई। मैंने खेल-खेल में उसे मारा। वह भयभीत होकर दूर भाग गई। उसके साथ एक मृग था। मृगी के भाग जानेपर उसने मुझे बहुत धिक्कारा। मैंने मृग को मनुष्य की बोली बोलते सुन, भय से विह्वल हो, उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि मैं मुनि निवृतचक्षुष का पुत्र सुतपा हूँ; इस मृगी के ऊपर मुग्ध होने के कारण मैंने मृग का रूप धारण किया है। तूने मुझे समागम नहीं करने दिया, इस कारण मैं तुझे शाप दूँगा जब। मैंने बहुत अनुनय-विनय की, तब उसने मुझसे विहार करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु मैंने कहा कि मैं तो मृगी नहीं हूँ, तुम किसी दूसरी मृगी को को तलाश लो। उसने क्रोध कर शाप दिया कि तू मृगी होजा। शाप से भयभीत हो मैंने हाथ जोड़कर उसकी बहुत विनय की और कहा कि पिता के रहते, उनकी अनुमति के विना मैं कैसे अपने शरीर को किसी को दे सकती हूँ, आप मेरे ऊपर दया करें और शाप से मेरा उद्धार करदें। उस ने कहा कि मेरा वचन झूठा नहीं हो सकता, तू इस जन्म के बाद मृगी की योनि में जायगी और सिद्धवीर्य मुनि के

प्रभाव से तेरे गर्भ में लोल नामक पुत्र आयेगा, उसी समय तुझे पूर्व जन्म का स्मरण हो आयेगा और तू पुत्र को उत्पन्न करते ही दिव्य लोकों को प्राप्त होगी; तेरा पुत्र लोल मनु के पद को प्राप्त करेगा। उसी शाप के कारण मैं इस जन्म में मृगी हुई हूँ और आपके स्पर्श करते ही मेरे उदर में लोल नामक तेजस्वी बालक आगया है, इसी कारण मैं मनुष्यों की बोली में पूर्व जन्म का वृतान्त बतलाने में समर्थ हुई हूँ। मैं आपकी पटरानी उत्पलावती हूँ।'

'मृगी की बातें सुनकर राजा को बड़ा आनन्द हुआ। वे उसी वन के रहकर तप करने लगे। यथा समय लोल का जन्म हुआ। मृगी बन्धन से मुक्त होगई। तामसी माता के गर्भ से दिव्य नक्षत्रों में जन्म होने के कारण लोल का नाम तामस पड़ा। राजा ने वैदिक विधि से पुत्र के सभी संस्कार किये और उचित रीति से उसका लालन-पालन किया। यथा समय बड़े होने पर तामस ने अपने पिता से सब वृतान्त जान लिया। उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने तप द्वारा सूर्य भगवान को प्रसन्न कर उनसे दिव्य अस्त्र-शस्त्रों को एवं उनके चलाने-रोकने की विधि-रहस्य को प्राप्त किया। फिर उन्होंने युद्ध में अपने पिता के शत्रुओं को परास्त कर उन्हें बंदी रूप में अपने पिता के सम्मुख उपस्थिति किया। उन के पिता ने उन सबको क्षमा करके

बन्धन-मुक्त करा दिया। तामस समस्त भूमण्डल को जीतकर एक-छत्र राज्य करने लगे। ब्रह्माजी ने उन्हें मनु की पदवी से विभूषित किया।'

'तामस-मन्वन्तर में सुधि, सुरूप, हर आदि सत्ताइस देवगण; शिखि नामक इन्द्र; ज्योतिधर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलाक, पीवर नामक सप्तर्षि; नर, क्षान्त, शान्त. दान्त, भानुजंघ आदि मनु-पुत्र हुए।'

—:o:—

अध्याय ७५

रैवत मन्वन्तर; रेवती नक्षत्र को शाप; रेवती-दुर्गम

मार्कण्डेयजी बोले—'पूर्वकाल में ऋतवाक ऋषि के बहुत प्रयत्न करने पर एक पुत्र हुआ। रेवती नक्षत्र के अन्त में उसका जन्म हुआ था, इस कारण वह बहुत ही दुष्ट और लम्पट हुआ। ऋषि ने संस्कार, शिक्षा आदि द्वारा बहुत उपाय किये, किन्तु पुत्र शीलवान न हो सका। जब उसने एक दूसरे मुनि की भार्या सम्मुखी को हरण कर उसे अपनी उपभोग्या दासी बना लिया, तब उसके पिता को बड़ा क्षोभ हुआ। पुत्र के जन्म के साथ ही माता-पिता को कुष्ठ आदि भयंकर रोगों ने और अनेक आपत्तियों ने घेर लिया

था। अन्त में पुत्र के दुष्कृत्यों से ऊबकर ऋषि ने सोचा कि कुपुत्र से तो अच्छा है पुत्र का न होना। कुपुत्र के कारण इस लोक में निन्दा होती है, संताप प्राप्त होता है, शुभ-कर्म नष्ट होजाते हैं और परलोक भी बिगड़ता है, पूर्व-पुरुष नरक में जाते हैं। कुपुत्र माता-पिता को दारुण क्लेश-संताप पहुँचाता है और अकाल में ही उन्हें वृद्ध करदेता है। गर्गजी ने उन्हें समझाया कि रेवती नक्षत्र में जन्म होने के कारण ही आपका पुत्र इस प्रकार दुष्ट-आचरणवाला हुआ है। कोई भी उपाय इसके शील को नहीं सुधार सकता। यह सुनकर ऋतवाक ऋषिने शाप दिया कि जिस नक्षत्र के प्रभाव से मनुष्य का शील नष्ट होजाय उस नक्षत्र का चन्द्र मण्डल में रहना ही उत्तम नहीं है, मैं शाप देता हूँ कि रेवती नक्षत्र अपने स्थान से च्युत होजाय। इस प्रकार शाप देकर उन्होंने रेवती को नक्षत्र-लोक से गिरा दिया। रेवती नक्षत्र कुमुदाद्रि पर्वत पर गिरा। तभी से उस पर्वत का नाम रैवतक होगया। नक्षत्र के गिरते ही पर्वत पर पंकजवत नामक एक सरोवर उत्पन्न होगया। उसी से एक अत्यन्त रूपवती कन्या प्रकट हुई। पास के वनमें रहनेवाले प्रमुचि नामक मुनि ने उस कन्या को लेकर उसका लालन-पालन किया। कन्या की कान्ति से दशों दिशाएँ जगमगाने लगीं। जब वह बड़ी हुई तब प्रमुचि को 'उसके

विवाह की चिन्ता हुई। तब उनकी आराधना से प्रसन्न होकर अग्निदेव ने कहा कि राजा दुर्गम से इसका विवाह होगा और उनका पुत्र मनु होगा। अग्निदेव के वचन सुन-कर मुनि प्रसन्न होगये।'

'कुछ काल बाद दुर्गम नाम राजा मुनि के आश्रम में आये। वे प्रियव्रत वंश में उत्पन्न राजा विक्रमशीलके पुत्र थे। राजा की दृष्टि सबसे पहले सुन्दरी कन्या रेवती पर पड़ी। उसके अलौकिक रूपने राजा पर बड़ा प्रभाव डाला। उसे देखते ही आत्मविस्मृत भाव से राज ने कहा—'प्रिये! शो-भने!! इस आश्रय के मुनि कहाँ? मैं उन्हें प्रणाम करने के लिये आया हूँ'। राजा के शब्दों को सुनकर मुनि अग्निशाला से निकलकर जल्दी-जल्दी राजा के पास आये और उन्हें आदर से अपनी कुटी में लेजाकर अपने शिष्यों से बोले—'ये हमारे राजा और दामाद हैं! इन्हें शीघ्रही अर्घ्य प्रदान करो।'

राजा को मुनि की बातों से बड़ा विस्मय हुआ। वे प्रणाम कर मुनि के दिये हुए आसन पर बैठ गये। मुनि फिर बोले—'यहाँ जो आपकी रेवती नामक रानी हैं, वे तो सकुशल हैं। आश्रमवासी भी सानन्द हैं। अब आप अपनी दूसरी रानियों की कुशल-वार्ता बतलाइये।'

राजाने विस्मित भाव से कहा—'आप की कृपा से हम

सब सकुशल हैं। पर मेरी समझ में नहीं आरहा है कि मेरी कौन-सी रानी यहाँ इस आश्रम में है। सुभद्रा,शान्त तनया, कावेरि तनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता,कदम्बा,वरूथजा, विपाठा, नन्दिनी नामक मेरी रानियाँ तो मेरे महलों में हैं। पर रेवती नामक तो मेरे कोई भी रानी नहीं है।'

मुनि-'आपने आश्रम में आते ही जिसे प्रिये, शोभने कहकर संबोधित किया था, वही रेवती है।'

राजाने तनिक संकोच, आशंका, विह्वलता के भाव से उत्तर दिया-'आश्रम में आने पर मैंने हड़बड़ा कर कुछ कह दिया था। मेरा कोई दूषित भाव न था। आप मुझे क्षमा कर दें।'

मुनि ने सब बातें बतलाकर राजा से विवाह का प्रस्ताव किया। राजा मान गये। विवाह कि तैयारियाँ होने लगीं। यह देख, कन्या ने प्रार्थना की कि मेरा विवाह रेवती नक्षत्र में किया जाय। मुनि ने रेवती नक्षत्र के शाप का हाल बतलाकर कहा कि उस नक्षत्र की अब गणना ही नहीं की जाती। कन्या ने कहा कि क्या ऋतवाक ऋषि की तपस्या मेरे पिता की तपस्या से अधिक उग्र थी जो अब रेवती नक्षत्र फिर चन्द्र मण्डल में स्थापित नहीं किया जा सकता? मुनि ने अपनी कन्या को प्रसन्न करने के लिए अपने तप से रेवती नक्षत्र को फिर से यथा स्थान स्थापित कर दिया

और कन्या का विवाह उसी नक्षत्र में किया। राजा ने मुनि से वर माँगा कि हमारा पुत्र मनु की पदवी प्राप्त करे। मुनि ने प्रसन्न होकर उन्हें मनचाहा वर दे दिया।'

'यथा समय रेवती रानी के रैवत-नामक पुत्र हुआ। रैवत ने उग्र सधाना द्वारा दिव्य ज्ञान एवं अमोघ अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्तकर तीनों लोकों को जीत लिया और मनु की पदवी को प्राप्त किया। रैवत मन्वन्तर में सुमेध, वैकुण्ठ, अमिताभ, आदि देवताओं के १४ गण; विभु-नामक इन्द्र; हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, पर्जन्य, वशिष्ठ नामक सप्तर्षि, बालबंधु, महावीर्य, सुयष्टव्य, सत्यक आदि मनु-पुत्र हुए। रैवत मनु स्वायंभुव मनु के वंश में ही हुए। केवल स्वारोचिष मनु उस वंश से पृथक हुए।'

अध्याय ७६

चाक्षुष मन्वन्तर; बालक को पूर्वजन्म का स्मरण

मार्कण्डेयजी बोले—'पूर्वकाल में राजर्षि अनमित्र की स्त्री से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे जन्म के समय ही अपने पूर्वजन्म का स्मरण था। जब उसकी माता उसे चुमकारने-दुलारने लगी तब बालक खूब ठठाकर हँसा। माताने

आश्चर्य मिश्रित भय से पूछा कि तुम इस अवस्था में इस प्रकार हँसे क्यों ? बालक ने मधुर वाणी से उत्तर दिया— 'कर्मों के प्रभाव से मुझे अपने पूर्व-जन्म का स्मरण है। इस समय पुत्र के स्नेह एवं भविष्य के भरण-पोषण के स्वार्थ के विचार से तुम मुझे प्यार कर रही हो। उधर बिल्ली मुझे खाने के लिए घात लगाये है। तीसरी ओर यह जातहरिणी अदृश्य होकर इस ताक में है कि अवसर मिले और मैं इस बालक को उड़ा लूँ। तीनों अपने-अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर मेरी ओर आकृष्ट हो रही हो। बिल्ली और जातहरिणी मुझे खाकर तुरंत अपना स्वार्थ साधन करना चाहती हैं। तुम धीरे-धीरे अपने स्वार्थ के साधन के उपाय में लगोगी, इसीसे तुम इतना प्रेम दिखला रही हो।'

पुत्र की बात सुनकर माता ने कुपित होकर उसे पलंग पर सुला दिया और यह कहकर वह वहाँ से चली गई कि मैं किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर प्रेम-प्रदर्शन नहीं कर रही थी, और यदि कोई स्वार्थ है भी तो उसे मैं त्याग देती हूँ।

'उसके वहाँ से जाते ही जातहरिणी ने उस बालक को उठा लिया और उसे ले जाकर राजा विक्रम की प्रसूता स्त्री के पलंग पर उसे रख दिया। फिर विक्रम के पुत्र को

ले जाकर उसने एक ब्राह्मणी के पलंग पर सुला दिया और उस ब्राह्मणी के पुत्र को उठा लिया और खा गई।'

'राजा विक्रम को इन बातों का पता न चला। उन्होंने उसी बालक को अपना समझा। उसके उन्होंने उचित संस्कार कराये। बालक का नाम आनन्द पड़ा। लालन-पालन के बाद जब आनन्द बड़ा हुआ तो उसका उपनयन संस्कार कराया गया। संस्कार के बाद गुरु ने उससे कहा कि तुम अपनी माता को प्रणाम करो। आनन्द ने कहा कि मैं किस माता को प्रणाम करूँ? जिसने मुझे पाला है, या जिसने मुझे जन्म दिया है? गुरु ने कहा कि राजा विक्रम की हैमिनी नामक रानी ही तुम्हारी माता है। बालक ने जातहारिणी द्वारा बालकों के बदले जाने का वृतान्त बतलाकर कहा—मैं राजा चक्षुष की रानी गिरिभद्रा के गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ। जातहारिणी मुझे वहाँ से उठाकर यहाँ ले आई और इनके पुत्र को उठाकर वह विशाल नगर के एक ब्राह्मण के यहाँ रख आई थी और उस ब्राह्मणी के पुत्र को खा गई थी। उस ब्राह्मण ने इन रानी हैमिनी के पुत्र को ही अपना पुत्र समझकर पाला है। उस पुत्र का नाम चैत्र है। इस संसार में जन्म लेते ही अनेक संबन्ध जुड़ जाते हैं और मनुष्य के मरने पर सभी संबन्धों की समाप्ति हो जाती है। वैसे तो कोई भी किसी का संबंधी

नहीं है, और जब जीव को बारबार जन्म लेना पड़ता है तब यदि संबंधों का ध्यान रक्खा जाने लगा, तो कभी संबंधों का न तो अन्त ही होगा, और न असल में निर्णय ही, क्योंकि कब कौन-सा संबंध किससे पड़े यह कहना कठिन है। मैं तो इन सब झंझटों से मुक्ति पाने के लिए तप करने जाता हूँ।'

सबसे विदा होकर आनन्द वन को चला गया। राजा विक्रम ने अपने पुत्र चैत्र को बुलाकर उसके संस्कार कराये और उसे राजगद्दी पर बैठाला।

'आनन्द वन में जाकर घोर तप करने लगा। कुछ काल बाद ब्रह्माजी ने आकर कहा कि तुम तो मनु का पद प्राप्त कर चुके, अब तुम्हारी यह तपस्या अनावश्यक है। उनके कहने से आनन्द ने तप करना छोड़ दिया। उन्होंने राजा उग्र की कन्या विदर्भा से विवाह कर प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये और पृथ्वी को जीतकर चाक्षुष मन्वन्तर की स्थापना की। चाक्षुष मन्वन्तर में आर्या, प्रसूत, भव्य, यूथग, लेख आदि देवताओं के गण; मनोज नामक इन्द्र; सुमेधा, विरजा, हविष्यमान, उन्नत, मधु, अतिनामा, सहिष्णु नामक सप्तर्षि; उरू, पुरु, शतद्युमान आदि मनु-पुत्र हुए।

अध्याय ७७-८०

वैवस्वत मन्वन्तर; सूर्य की स्त्रियां संज्ञा-छाया, सूर्य-पुत्र: यम-विवस्वान-अश्विनीकुमार-सावर्णि, सूर्य का तेज चक्र पर कम; सूर्य के तेज से अस्त्र-शस्त्र बने

मार्कण्डेयजी बोले—'विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से सूर्य भगवान का विवाह हुआ। सूर्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा अपनी आँखें बन्द कर लेती थी। सूर्य ने इसपर रुष्ट होकर शाप दिया कि तेरा पुत्र प्रजा को पीड़ा देनेवाला होगा। इस शाप के कारण संज्ञा के यम नामक पुत्र हुए। शाप से डरकर संज्ञा सूर्य के आने पर अपने नेत्रों को चंचल कर लेती थी। इस कारण रुष्ट होकर सूर्य ने फिर शाप दिया कि तुझसे अति चंचला कन्या उत्पन्न होगी। फलतः यमुना का जन्म हुआ। जब सूर्य का तेज असह्य होगया तो संज्ञा ने अपने शरीर से अपनी छाया को प्रकट कर उसे ठीक अपने ही ऐसा रूप दिया और कहा कि तू मेरे स्थान पर यहाँ रहकर सूर्य भगवान के साथ सुख-ऐश्वर्यों को भोग, पर मेरे जाने का हाल न बतलाना।

'संज्ञा चली गई। छाया सूर्यभगवान की सेवा करने

लगीं। उसके सूर्य के अंश से दो पुत्रों और मनोरमा तपती कन्या की उत्पत्ति हुई। संतान के हो जाने पर छाया यम और यमुना से द्वेष मानने और उन्हें तंग करने लगी। अन्त में एक दिन यम ने उसके व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसे मारने को पैर उठाया, पर मारा नहीं। छाया ने शाप दिया कि तुम्हारा पैर गिर जाय। यम ने अपने पिता से सारा हाल बतलाकर कहा कि यह मेरी माता नहीं हो सकती, पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं हो सकती, वह अपनी संतान के प्रति सदा सदय और स्नेहशीला रहेगी। सूर्य ने शाप को बदलकर यम के पैर को गिरने से बचा लिया। फिर छाया को शाप का भय दिखलाकर उससे असली भेद जान लिया। संज्ञा के जाने का वृतान्त सुनकर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ।

'इधर संज्ञा अपने पिता विश्वकर्मा के पास गई और वहाँ रहने लगी। कुछ काल बाद विश्वकर्मा ने कहा कि पिता अपनी पुत्री को सदा सुखी देखना चाहता है। मैं तुम्हें अपनी आँखों से अलग नहीं होने देना चाहता। पर लोक-व्यवहार के आगे सभी को सर झुकाना पड़ता है। तुम्हें अपने पति के पास से आये हुए बहुत समय बीत गया। उनके नित्यकर्मों में व्याघात पड़ रहा होगा। उचित यही है कि अब तुम उनके पास लौट जाओ।'

'संज्ञा पिता से विदा होकर वहाँ से चल पड़ी। पर सूर्यलोक में जाने का उसका साहस न हुआ। वह कुरु-प्रदेश में जाकर घोड़ी का रूप रख पति के असह्य तेज को कम कराने के उद्देश्य से तप करने लगी।'

'इधर जब सूर्य भगवान को संज्ञा के चले जाने का हाल विदित हुआ तो वे बहुत व्याकुल हुए। वे अपने ससुर विश्वकर्मा के यहाँ गये। विश्वकर्मा ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। सूर्य भगवान ने संज्ञा के संबंध में पूछा। जब उन्हें यह पता चला कि संज्ञा तो वहाँ से चली गई है, तो उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने विश्वकर्माजी से अनुरोध किया कि आप मेरे तेज को कम कर दीजिये। उन्होंने सूर्य को संवत्सर-चक्र पर चढ़ाकर उनके तेज के १५ भागों को पृथक्कर दिया। सूर्य भगवान अपने तेज के १६वें अंश से सुन्दर, सुडौल रूप प्राप्तकर संसार में सुशोभित हुए। जिस समय विश्वकर्माजी सूर्यदेव के तेज को कम करने की क्रिया में संलग्न थे, उस समय देवगण ने आकर स्तुति-आराधना द्वारा सूर्य भगवान को संतुष्ट रक्खा।

'सूर्य भगवान के तेज के १५ अंशों को लेकर विश्वकर्मा ने उनसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, शिव के त्रिशूल, विष्णु के चक्र, वसु के बाण, अग्नि की ज्वाला, कुबेर की शिविका,

तथा इसी प्रकार के अन्य अमोघ दिव्य अस्त्र-शस्त्र की रचना की।

'अपने तेज को कम कराकर सूर्य भगवान संज्ञा की खोज में निकले। दिव्य-दृष्टि से उन्होंने जान लिया कि वह घोड़ी के रूप में कुरुक्षेत्र में उन्हीं के लिए तप कर रही है। वे घोड़े का रूप बनाकर कुरु-प्रदेश में गये और संज्ञा को देखकर उसकी ओर दौड़े। अन्य पुरुष की आशंका से संज्ञा ने अपने पीछे के हिस्से को दूर रखकर मुख को सामने किया। सूर्य भगवान ने घोड़े के रूप में उसके नथुनों से अपने नथुने रगड़े। इस संघर्ष से नासत्यदस्रों की उत्पत्ति हुई जो, बाद में देवों के वैद्य अश्विनी-कुमार के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस समय संज्ञा के प्रेम के कारण सूर्य का अंश पृथ्वी पर गिर गया, जिससे रेवन्त नामक पुरुष की उत्पत्ति हुई। वह आगे चलकर गुह्यकों का राजा होगया। सूर्य भगवान संज्ञा को समझा-बुझाकर अपने लोक में ले आये। उससे वैवस्वत मनु की उत्पत्ति हुई। यम को सभी प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों का निर्णय करने तथा उसी के अनुसार फल देने का अधिकार दिया गया। उनकी यमुना कन्या महानदी हुई जो बाद में कालिंदी के नाम से श्री कृष्ण जी की पटरानी बनी। दूसरी कन्या तपती का विवाह कुरु देश के राजा सम्वरण से हुआ और उनके मनु-

जेश्वर नामक पुत्र हुआ। छाया के पुत्र शनैश्चर को ग्रहों में स्थान मिला और दूसरे पुत्र का नाम सावर्णि हुआ जो आगे चलकर मनु के पद को प्राप्त करेंगे।

'संज्ञा के पुत्र वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वगण, मरुद्गण भृगुगण, अंगिरसगण, ये आठ देवताओं के गण हुए। यह सर्ग मारीच सर्ग के नाम से प्रख्यात है। इंद्र का नाम ऊर्ज्जस्वी है। अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कौशिक, विश्वामित्र, यमदग्नि ये सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, दिष्ट, करूष, पृषध्र, वसुमान नामक नौ मनु-पुत्र हैं।

'छाया के पुत्र सावर्णि आठवें मनु होंगे। सावर्णि मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान, कृप, ऋष्यश्रृंग, अश्वत्थामा ये सप्तर्षि होंगे। सुतपा, अभिनाभ, मुख्या इन तीन देवताओं के गण त्रिगुण-विंशक नाम से प्रसिद्ध होंगे, विंशकगण में तप, स्वतपस्वी, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजराशि, क्रतु, प्रभु, विभास, विभु, दम, दान्त, ऋतु, सोम, चिन्तादि देवता होंगे। विरोचन के पुत्र राजा बलि इस मन्वन्तर में राजा इंद्र होंगे। विरजा, अर्वबीर, निर्मोह, सत्यवाक, कृति, विष्णु, आदि मनु-पुत्र होंगे।

(देवी माहात्म्यः दुर्गा-सप्तशती)

अध्याय ८१

राजा सुरथ, समाधि, मेधाऋषि, विष्णुद्वारा मधुकैटभ-वध

मार्कण्डेयजी बोले—'सूर्य-पुत्र सावर्णि जिस प्रकार आद्या-महामाया के प्रभाव से आठवें मनु हुए उसका वर्णन सुनो। स्वारोचिष मनु के पुत्र चैत्र के वंश में सुरथ नामक एक राजा हुए। वे अपनी प्रजा को अपनी संतान की तरह पालते थे। एकबार उन्हें अपने शत्रु कोला-विध्वंसियों से भयंकर युद्ध करना पड़ा। शत्रुओं ने उन्हें हरा दिया। सुरथ अपने राज्य में लौट आये। वहाँ उनके दुष्ट मंत्री आदि ने उनकी सेना और सब सम्पत्ति-खजाना छीन लिया। राजा सुरथ भागकर जंगल में मेधस ऋषि के आश्रम में रहने लगे। वहाँ राजा को सदा यही चिन्ता सताती रहती थी कि "मेरी प्रजा की क्या दशा होगी, कठिनता से जोड़ा हुआ खजाना व्यर्थ के खर्च में खाली हो गया होगा, हाथी-घोड़ों का क्या हाल होगा, राज्य कैसे चलता होगा? आदि-आदि।'

'इधर-उधर घूमते हुए राजा को आश्रम के पास एक मनुष्य देख पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह समाधि

नामक वैश्य है। धनियों के कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पासखूब धन था। उसके पुत्र-स्त्री और घरवालों ने लोभ के कारण उसका धन सब छीन लिया है। इसीसे वह उदास होकर वन में चला आया है। किन्तु यहाँ घर-द्वार, पुत्र-स्त्री की खबर न मिलनेसे व्याकुल रहता है। यही चिन्ता सताती रहती है कि घर पर सबका का क्या हाल होगा।'

'राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। ऋषि के पास उसे ले जाकर उन्होंने पूछा—"महाराज! यह कैसी विडम्बना है! मेरा राज्य गया, पर मुझे उसी की चिन्ता लगी रहती है। इन वैश्य का धन इन्हीं के दुष्ट पुत्रों ने छीन लिया है, पर ये उन्हीं की क्षेम-कुशल के निमित्त व्याकुल रहते हैं। हम दोनों ही ममता के कारण दुःखी हैं। कैसा आश्चर्य है कि हम ज्ञानियों को भी मोह सता रहा है! ऐसी मूढ़ता तो अविवेकी अंधों में ही होनी चाहिए।'

ऋषि बोले—'सभी जीवों को विषय का ज्ञान है, किन्तु सबके विषय पृथक-पृथक हैं। कुछ प्राणी दिन में अंधे हो जाते हैं और कुछ रात्रि में; किन्तु कुछ ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें दिन-रात बराबर देख पड़ता है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी में समान ज्ञान है। पक्षियों को देखो, वे जानते हैं कि बच्चों के मुख में दाना देने से माता-पिता की भूख-

शान्त नहीं हो सकती, तो भी वे स्वयं भूखे रहकर अपनी चोंचों से उठा-उठाकर बच्चों के मुख में दाने देते हैं। मनुष्य प्रत्युकार के लोभ से बालकों का पालन करते हैं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली महामाया के प्रभाव से ही प्राणी ममता-मोह में फँसे हुए हैं। इसमें विस्मय का तो करना ही न चाहिए, क्योंकि जगत के स्वामी विष्णु की निद्रा ही योगमाया है और इसीने संसार को मोहित कर रक्खा है। वह देवी भगवती ज्ञानियों के चित्त को भी बरबस खींचकर मोह में डाल देती है। उसी से वर प्राप्तकर प्राणी मुक्त हो सकता है। वही देवी संसार के बन्धनों का कारण और सब ईश्वरों की सर्वेश्वरी भी है।'

राजा—'महाराज! वह देवी महामाया कौन है? वह कैसे उत्पन्न हुई और उसने क्या-क्या कर्म किये? उसका भाव और स्वरूप क्या है?'

ऋषि बोले—'वह देवी जगन्मूर्ति नित्य है, उसी ने इस संसार को प्रकट किया है। वह देव-कार्य के लिए समय-समय पर प्रकट होती है। वह नित्या है। एकबार कल्प के अन्त में प्रलय होने पर भगवान विष्णु योग-निद्रा का आश्रय लेकर शेष पर शयन कर रहे थे। उस समय सहसा उनके कान के मैल से मधु-कैटभ नामक दो भयंकर असुर

उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी को मारने के लिए तैयार होगये। विष्णु के नाभि-कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी ने भयभीत होकर देखा, विष्णु भगवान सो रहे हैं। तब ब्रह्माजी ने हरि को जगाने के लिए उनके नेत्रों पर स्थित रहनेवाली तामसीदेवी योगनिद्रा की स्तुति की, कि इन दोनों को मोहितकर इनका वध कराइये। स्तुति से प्रसन्न हो, विष्णु के नेत्र, नासिका, हृदय से निकलकर महामाया ने ब्रह्माजी को दर्शन दिये। योगमाया के प्रभाव से मुक्त होकर विष्णु भगवान उठे और उन्होंने एकार्णव में उन दोनों दानवों को देखा। वे दोनों क्रोध से आँखें लाल किये हुए ब्रह्माजी को खाने के लिए दौड़ चले आ रहे थे। विष्णु भगवान ने दोनों से घोर युद्ध किया। पांच हजार वर्ष तक भीषण युद्ध चलता रहा। महामाया ने उनकी बुद्धि को मोहित कर दिया। दोनों बल के मद में मतवाले होकर विष्णु भगवान से बोले कि हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं, तुम हमसे वर माँगो। विष्णु भगवान ने उन्हें वचन-बद्धकर वर माँगा कि तुम हमारे हाथ से मारे जाओ। दोनों ने समझ लिया कि हमें धोखा दिया गया। पर वचन दे चुके थे। चारों ओर जल-ही-जल देखकर उन्होंने कहा कि तुम्हारे युद्ध से हम प्रसन्न हैं, तुम्हारे हाथों से मरना भी श्लाघनीय है, पर तुम हमें वहीं मारो जहाँ जल न हो। विष्णु ने अपनी

जंघाओं को बढ़ाकर उनपर उन दोनों के सर रखकर काट डाले। भगवती के प्रभाव से ब्रह्माजी का संकट दूर हुआ।'

अध्याय ८२

महिषासुर की विजय, देवगण के तेज से देवी का प्रादुर्भाव

ऋषि बोले—'पूर्वकाल में एकबार बड़ा प्रचण्ड देवासुर-संग्राम हुआ। बराबर सौ वर्षों तक युद्ध चलता रहा। अन्त में देवता हार गये। दैत्यों के राजा महिषासुर ने स्वर्ग पर अपना कब्जा जमा लिया। इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि सभी के अधिकार महिषासुर ने छीन लिये। सब देवता विपत्ति में पड़ गये। ब्रह्मा को आगे करके वे लोग अपनी फरियाद सुनाने विष्णु भगवान के पास गये। देवों की दुर्दशा सुनकर विष्णु भगवान और शम्भु को बड़ा क्रोध आया।

'क्रोध के आवेग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव के शरीर से बड़ा भारी तेज निकलने लगा। साथ ही इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि के भी शरीर से तेज निकल-निकलकर एक पर्वत की तरह इकट्ठा होगया और अग्नि की तरह जलने लगा। दशों दिशायें उस तेज से प्रकाशित हो उठीं। तेज ने धीरे-धीरे एक स्त्री का शरीर धारण किया। शिव के तेज से

मुख बना, यम के तेज से केश बने, विष्णु के तेज से बाहु बने। इसी तरह शरीर का एक-एक अंग एक-एक देवता के तेज से बन गया। उस देवी के तेज से संसार जगमगा उठा। सब देवों ने अपने अस्त्र-शस्त्र उसे अर्पित कर दिये। हिमवान ने वाहन के लिये सिंह दिया। फिर देवी को वस्त्राभूषणों से सजाया। देवता पूजा-स्तुति करने लगे।'

'देवों को दुखित-क्लेशित देख देवी ने बड़े जोर की गर्जना की। तीनों लोक काँप उठे। समुद्र खलबला गया। पहाड़ हिलने लगे। महिषासुर ने भी यह देखा। पहले तो वह आश्चर्य से बोला कि यह क्या है? फिर कुछ संभलकर वह क्रोध करके अपनी सेना सजाकर दौड़ पड़ा। देवी से तीनों लोक व्याप्त हो गये थे। घोर युद्ध होने लगा। कोटि-कोटि रथ, हाथी, घोड़े पर बैठे हुए एक से एक विकराल वीर राक्षसों ने देवी को आकर घेर लिया। महिषासुर का सेनापति चिक्षुर एवं चामर, उदग्र, महाहनु, असिलोमा, बाष्कल, विडाल आदि सामन्त लाखों सैनिकों को लेकर युद्ध करने लगे। लाखों तरह के भयंकर हथियार चलने लगे। पानी की बूँदों की तरह शस्त्रास्त्रों की वर्षा होने लगी। देवी और उनका वाहन सिंह बिजली की तरह तड़प-तड़प कर राक्षसों का संहार करने लगे। किसी का सिर कटा, किसी के हाथ-पैर कटे, किसी के टुकड़े टुकड़े हो

गये, किसी की आंतें निकल आईं। लाखों बिना सिर के कबन्ध उठ-उठकर नाचने और तलवार चलाने लगे। लाखों राक्षस मर-मरकर, कट-कटकर गिरने लगे। देवी पर फूलों की वर्षा होने लगी। देवता उनकी स्तुति करने लगे।'

—:o:—

अध्याय ८३

महिषा सुर-वध

ऋषि बोले—'अपनी सेना का नाश देखकर महिषासुर का सेनापति, चिक्षुर बड़े वेग से आकर देवी पर तीख-तीखे बाण बरसाने लगा। देवी ने उस के धनुप को तोड़ डाला, रथ चूर्ण कर दिया, घोड़ों को मार डाला। तब वह राक्षस तलवार लेकर देवी पर झपटा। बहुत विकट युद्ध के बाद देवी ने उसे मार गिराया। उसे मरा हुआ देख सेना-नायक उदग्र, कराल, उद्धत, वाष्कल, ताम्र, अन्धक, महाहनु, बिडाल, उग्रवीर्य, दुर्द्धर, दुर्मुख आदि अनेक दानव वीर आये और देवी पर असंख्य अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे। पर देवी ने सब को मार गिराया। इस प्रकार अपनी सेना को नाश होते देख महिषासुर ने बड़ा प्रचंड रूप धारण किया।

तीनों लोक उससे काँप उठे। देवी ने बड़े कठिन के युद्ध बाद उसे पाश में बाँध लिया। पर महिषासुर रूप बदल कर सिंह हो गया। फिर जबतक देवी उसका सिर काटें तब-तक में वह मनुष्य बनकर सटक गया। इस प्रकार रूप बदल-बदल कर महिषासुर ने भीषण युद्ध किया। तीनों लोक उसके भय से थर-थर काँपने लगे। वह पहाड़ों की वर्षा करने लगा। देवी को बड़ा क्रोध आया। उसके सब अस्त्र-शस्त्र काट कर अन्त में देवी ने उसका सिर काट गिराया। उसके गिरते ही बाकी बचे हुए दैत्यों को भी क्षण भर में देवी ने नष्ट कर दिया। देवगण जय-जय की ध्वनि करने लगे। आकाश से फूल बरसने लगे। अप्सरायें नाचने और गन्धर्व गाने लगे। सब सुखी हो गये।'

—:०:—

अध्याय ८४

देवताओं द्वारा स्तुति, देवी का वर

ऋषि बोले—'अपने घोर वैरी महिषासुर के मारे जाने पर सब देवता सुखी होगये। बड़ी भक्ति, श्रद्धा, तत्परता से सब ने मिल कर देवीकी पूजा की। फिर सब हाथ जोड़ कर, मस्तक नवा कर स्तुति करने लगे—"हे महामाया! आप के अनन्त प्रभाव का वर्णन ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तक

नहीं कर सकते। आप ही इस जगत का पालन, नाश और उत्पत्ति करती हैं। सब जीवों में, सब जगत में, एक एक छोटे से छोटे किनके में आप व्याप्त हैं। सभी देवता आप के प्रभाव से अपना-अपना काम करते हैं। सुख,शान्ति भक्ति, मुक्ति, के लिये देवता, सिद्ध, साधक, ऋषि, मुनि सभी आपकी पूजा-अर्चा करते हैं। जिसपर आप का कोप हो जात है वह कुल का कुल नष्ट हो जाता है और जिस पर आपकी तनिक दया-दृष्टि हो जाती है उसकी अनेक पीढ़ियाँ धन-धान्य, सुख-ऐश्वर्य से भरी-पूरी हो जाती हैं। आपके स्मरण करते ही सब प्रकार के दुःख, रोग, शोक, संकट,विघ्न क्षण भर में दूर हो जाते हैं। आपके बल-पराक्रम की कोई भी थाह नहीं पा सकता। संसार को विकल करने वाले इस प्रचण्ड दानव को मार कर आपने बड़ा उपकार किया, बड़ी दया की। हमारी आप अब सब प्रकार से रक्षा करें। आप ही हमारी रक्षा करने वाली हैं।'

'इस प्रकार भक्ति, श्रद्धा से भाव पूर्ण स्तुति किये जाने पर देवी सन्तुष्ट हो गईं। प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—'आप लोग मन चाहा वरदान माँगें।'

'देवता हाथ जोड़, सिर नवा, गद्गद हो कर बोले 'मह माया! आपकी दया से हमारे सब कष्ट दूर गये। हमें सभी कुछ प्राप्त हो गया। अब हमें और कछ न चाहिये।

पर आपकी इच्छा है तो यह वरदान दें कि जो मनुष्य श्रद्धा विश्वास से आपकी स्तुति करेगा और भक्ति-भाव से विधि पूर्वक आपकी पूजा-अर्चा करेगा उसके सब सङ्कट काटकर उसे धन-जन, दूध-पूत, सुख-ऐश्वर्य से भरा-पूरा कर देंगी, उसे सब तरह से वृद्धि देंगी।'

'देवगण को मुँह माँगा वरदान देकर देवी अन्तर्धान हो गईं। ऋषि बोले-"वही महामाया दुष्ट दैत्य शुंभ-निशुंभ को मारने के लिये फिर किस प्रकार गौरी के रुप में प्रकट हुईं इसका वृत्तान्त आगे सुनो।"

—:o:—

अध्यय-८५

शुंभ-निशुंभ से हारकर देवगण का देवी की स्तुति करना, दूत-देवी सम्वाद

ऋषि बोले-'एक बार शुंभ और निशुंभ नाम के बड़े प्रबल दैत्य हुए। इन्द्र आदि देवगण को हराकर उन दैत्यों ने उनका सारा राजपाट और अधिकार छीन लिया। सब देवतागण आपत्ति के मारे बिलखते फिरने लगे। संकट के समय उन्हें अपराजिता महामाया का ध्यान आया। वे हिमालय पर्वत पर गये और सब मिलकर स्तुति करने

लगे—"जो देवी सभी प्राणियों में विष्णु-माया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, शक्ति, शान्ति, श्रद्धा, क्षमा, कान्ति, लक्ष्मी, स्मृति, दया, माया के रूप से व्याप्त है उसे हमारा नमस्कार है। महामाया आदि शक्ति को बारम्बार नमस्कार है। जिस देवी से सब का कल्याण होता है, सबकी रक्षा होती है, वह हमारी रक्षा शुम्भ, निशुम्भ से करे। जिसने सदा देवों को संकटों और क्लेशों से बचाया है वही महामाया इस घोर आपत्ति-काल में हमारी सहायता करे।"

देवगण जिस समय इस प्रकार स्तुति कर रहे थे उसी समय पार्वती उस ओर से गंगा स्नान करने के लिए निकलीं। पार्वती ने पूछा—"आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं?"

'तब पार्वती के शरीर से शिवा ने प्रकट होकर कहा—"शुम्भ निशुम्भ ने सब देवगण को हरा दिया है। इससे देवगण उन दैत्यों के नाश के लिए स्तुति कर रहे हैं।" पार्वती के शरीर से एक अद्भुत शक्ति निकलकर अम्बिका के रूप में प्रकट हुई। पार्वती भी कृष्णारूपा कालिका हो गईं और हिमालय में रहने लगीं।'

'अम्बिका के तेज और रूप से दिशाएँ जगमगा उठीं। शुम्भ-निशुम्भ के दो सेवक चण्ड-मुण्ड ने संयोगवश अम्बिका के अद्भुत मनोहर रूप को देखा। उन्होंने जाकर शुंभ से कहा—"महाराज! हिमालय पर एक अनोखी सुन्दर

स्त्री विराजमान है। आपके घर में दुनिया भर की उत्तम-उत्तम मणियाँ और वस्तुएँ हैं। सब देवों की सम्पत्ति आप ने ले ली है। इन्द्र से आप हाथियों में रत्न ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा और कल्पवृक्ष लाये हैं;ब्रह्माका हंसोंसे युक्त विमान आपके पास है; कुबेर से महापद्मनिधि; वरुण से स्वर्ण-वर्षी छत्र, प्रजापति से दिव्य रथ, तथा अन्य देवों से श्रेष्ठ रत्न लाये हैं। आप रत्न-भोगी हैं। आप इस स्त्री-रत्न को भी अवश्य अपनावें।"

उसकी बात सुनकर शुंभ ने सुग्रीव को अपना दूत बनाकर अम्बिका के पास भेजा। वह देवी के पास जाकर बोला—"तीनों लोकों के परमेश्वर शुम्भ ने मुझे आपके पास भेजा है। उनकी आज्ञा संसार भर में कोई टाल नहीं सकता। देवता, दैत्य सभी उनके वश में हैं। उनकी आज्ञा है कि आप उनके या उनके भाई निशुंभ के साथ विवाह करके उनके घर की शोभा बढ़ावें। वे रत्नभोगी हैं, सभी-रत्न उनके घर में हैं। आप मेरे साथ उनके पास चलें।"

तीनों लोकों को धारण करनेवाली देवी हँसकर बोलीं —"जो तुमने कहा सो ठीक है। शुंभ-निशुंभ तीनों लोक के स्वामी हैं, पर मैंने पहले से प्रतिज्ञा करली है कि जो मुझे युद्ध में जीत लेगा मैं उसी के साथ विवाह करूँगी। शुंभ अथवा निशुंभ जो भी चाहे, मुझसे लड़ ले। जो

मुझे हरा देगा उसी को मैं जयमाला पहना दूँगी।"

दूत ने क्रोधित होकर कहा—'तुम्हें बड़ा घमण्ड होगया है,जो मेरे सामने ऐसी बातें करती हो। तीन लोक में ऐसा कौन है जो शुंभ-निशुंभ से लड़ सके। इन्द्र, वरुण, कुवेर सभी को उन्होंने हरा दिया है। फिर वे कैसे एक साधारण स्त्री से लड़ेंगे ? सीधे मेरे साथ चली चलो, नहीं तो मैं बाल पकड़कर घसीटता हुआ अपमान पुर्वक तुम्हें ले जाऊंगा।'

देवी ने शान्ति पूर्वक कहा—"शुंभ-निशुंभ ऐसे महाबली हैं। पर मैं क्या करूँ। मैं तो पहले से प्रतिज्ञाकर चुकी हूँ। मैं विवश हूँ। विना युद्ध के मैं विवाह नहीं कर सकती। उनसे जाकर मेरी प्रतिज्ञा की बात कह दो।"

अध्याय ८६

धूम्रलोचन और सेना का वध

ऋषि बोले—'दूत ने आकर खूब बढ़ा-चढ़ाकर देवी की बातें शुंभ-निशुंभ से कहीं। उन दैत्यों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचन से कहा—"तुम अपनी सेना लेकर जाओ और उस दुष्ट स्त्री को बाल

पकड़कर खींचते हुए लाओ। जो कोई भी देव, यक्ष उसको बचाने आगे उसे मार गिराना।"

साठ सजार सेना लेकर धूम्रलोचन देवी के पास जाकर बोला—"खुशी से शुंभ निशुंभ के पास चली चलो, नहीं तो बाल पकड़कर खींच ले जाना पड़ेगा।"

देवी बोलीं—"तुम बलवान् हो। सेना तुम्हारे साथ है। यदि बलपूर्वक ले जाओगे तो मैं क्या कर सकूंगी।"

यह सुनकर धूम्रलोचन गर्जकर देवी की तरफ दौड़ा। देवी ने एक ही हुंकार में उसे भस्म कर दिया। क्षण ही भर में देवी के बाणों ने और सिंह ने सारी असुर-सेना को भी नष्ट कर डाला।

'सारी सेना और धूम्रलोचन का इस प्रकार नष्ट होना सुनकर शुंभ-निशुंभ को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चंड-मुंड को असंख्य सेना के साथ देवी और उनके वाहन सिंह को पकड़ लाने या मार डालने के लिए भेजा।'

अध्याय ८७

चण्डमुण्ड-बध, चामुण्डा

ऋषि बोले—चण्ड-मुण्ड ने देखा, देवी शिखर पर बैठी हँस रही हैं और उनका वाहन सिंह भी ऊँचा मस्तक किये

बैठा है। हजारों तरह के शस्त्रास्त्र लेकर वे उस ओर दौड़ पड़े। देवी का मुख क्रोध से तमतमा उठा। भौंहें चढ़ गईं, ललाट पर सिकुड़न पड़ गईं। उनके वदन से कराल वदना, नर-मुण्डमाला पहने भयंकर काली प्रकट हुईं। नाना प्रकार के दिव्य शस्त्रास्त्र लिये कराल वदना काली दैत्य सेना पर टूट पड़ीं और उस दैत्य-सेना का संहार करने लगीं। किसी को काटा,किसीको चूर्ण किया,किसी को चबा डाला। इसी तरह देखते-देखते दैत्य-सेना नष्ट हो गई।'

'यह देखकर चण्ड-मुण्ड दोनों चक्र और बाणों की वर्षा करते हुए दौड़े। काली ने अट्टहास करते हुए चण्ड के सिर के बाल पकड़ कर तलवार से उसका सिर काट लिया। यह देखकर मुंड दौड़ा। पर देवी ने उसे भी मार गिराया। जो कुछ दैत्य बचे थे वे भाग गये। देवी ने काली से कहा—तुमने चण्डमुण्ड का नाश किया है इस कारण संसार में तुम चामुण्डा के नाम से प्रसिद्ध होगी।'

अध्याय ८८

शुंभ-निशुंभ द्वारा आक्रमण, रक्तबीज-वध

ऋषि बोले—'चण्ड-मुण्ड और उनके साथ की सेना का विनाश देखकर शुंभ-निशुंभ क्रोध से काँपने लगे। वे उदा-

युध,कम्बु,कोटिवीर्य, कालका, दौहृत, मौर्य, कालकेय, धौम्र आदि दानव जातियों की असंख्य सेना लेकर दौड़ पड़े। चण्डिका ने दैत्य सेना को देखकर घोर गर्जन किया। सिंह भी गरज उठा। तीनों लोक उनके गर्जनसे भर गये। दैत्यों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया।'

'उसी समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव,इन्द्र,वरुण आदि सभी देवों की शक्तियाँ उनके शरीर से निकल-निकल कर उन्हीं का रूप धारण किये और उनके शस्त्रास्त्रों-आयुधों-वस्त्रों से सुसज्जित होकर एवं उनके निजी वाहनों पर चढ़-चढ़ कर दैत्यों से युद्ध करने के लिए आ गईं। तब देवी चंडिका के शरीर से अपराजिता अति उग्र भयावनी शक्ति निकली। उसने शिव से कहा कि तुम हमारे दूत बनकर शुंभ-निशुंभ के पास जाओ और कहो कि तुम लोग यदि जीना चाहो तो देवों के सब अधिकार उन्हें देकर सीधे पाताल चले जाओ। नहीं तो मारे जाओगे। शिवका नाम शिवदूती पड़ा।'

'शिव ने जाकर दैत्यों से वह संदेश कहा। दैत्य क्रोध से जल उठे। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाते हुए वे देवी कात्यायनी पर टूट पड़े। देवी ने बाण, शक्ति, शूल से काटना शुरू कर दिया। काली भी नाच-नाच कर दैत्यों का संहार करने लगीं। कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐंद्री, नारसिंही आदि सभी शक्तियाँ अपने-अपने शस्त्रों से राक्षसों

को मारने-काटने लगीं। दैत्यों की सेना में हाहाकार मच गया। लाखों मारे गये। बहुत-से अपने प्राण लेकर भागने लगे। दैत्य-सेना का यह हाल देख कर रक्तबीज को बड़ा क्रोध आया। वह घोर युद्ध करने लगा। उसके शरीर से जितनी खून की बूँदें जमीन पर गिरतीं उतने ही दैत्य तैयार हो जाते और लड़ने लगते। इस प्रकार हजारों-लाखों नये-नये दैत्य खून की बूँदों से बन-बन कर लड़ने लगे। सब शक्तियाँ मिल कर बार-बार उन्हे मार गिरातीं और हरबार एक-एक दैत्य की जगह हजारों-लाखों दैत्य तैयार हो जाते। रक्तबीज के शरीर से गिरी हुई रक्त की बूँदों से इतने दैत्य बनकर तैयार हो गए कि संसार भर में जहाँ देखो वहीं राक्षस-ही-राक्षस देख पड़ने लगे। देवता भय से विकल हो उठे। संसार काँप गया। हा-हा कार मच गया।'

'यह दशा देखकर देवी ने काली से कहा—"तुम अपना मुँह खूब बड़ाकर लो। जीभ से जमीन को छा दो। रक्तबीज दानव के शरीर से जो रक्त गिरे उसे सब पी जाओ। एक बूंद भी जमीन पर न गिरने पाये। दैत्यों के नाश करने का यही उपाय है। न रक्त जमीन पर गिरेगा और न नये दैत्य पैदा होंगे।"

'काली ने वैसा ही किया। शक्तियों ने असुरों का संहार

करना शुरू किया। काली अपनी जीभ बढ़ाकर सब रक्त शोषण करने लगीं। देखते-देखते रक्तबीज असुर नष्ट हो गये। शक्तियां हर्ष से नाच उठीं। संसार भय से मुक्त हुआ। देवता फूल बरसाने और स्तुति करने लगे।'

अध्याय ८६

निशुम्भ-बध

राजा के पूछने पर ऋषि बोले—'रक्तबीज का नाश देखकर शुंभ-निशुम्भ व्याकुल हो गये। सब सेना लेकर वे देवी पर टूट पड़े। शस्त्र-अस्त्रों की घनघोर वर्षा होने लगी। घमासान युद्ध होने लगा। लाश-पर-लाश गिरने लगीं। निशुम्भ ने एक तेज तलवार देवी के वाहन सिंह के सर पर मारी। देवी ने उसकी ढाल-तलवार काटकर गिरा दी। निशुंभ ने शक्ति चलाई। पर देवी ने उसे चक्र से बीच ही में काट गिराया। निशुंभ ने शूल चलाया, पर वह भी व्यर्थ गया। इसी प्रकार उसने अनेकानेक शस्त्रास्त्र चलाये और देवी ने सभी काट गिराये। अन्त में देवी की मार से वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।'

'उसे गिरा हुआ देखकर शुंभ नें दौड़कर देवी का

का सामना किया। खूब जमकर लड़ाई हुई। लाखों तरह के अस्त्र-शस्त्र चले। अन्त में शुंभ आकाश में उड़ गया और इतने जोर से गर्जा कि तीनों लोक काँप उठे। देवी ने उसे मूर्छित कर भूमि पर गिरा दिया।'

निशुंभ मूर्छा से जागकर दौड़ पड़ा। उसने नाना प्रकार के छल-कपट करके हजारों तरह के शस्त्र-अस्त्र चलाकर देवी से युद्ध किया। उसके साथी दानवों ने घनघोर बाणों और शूलों की वर्षा की। अन्त में देवी ने एक ऐसा शूल मारा की वह उसके हृदय से आर-पार निकल गया और फिर बिजली-सी चमककर देवी ने खड्ग से उसका सिर उतार लिया। उसके साथी असुरों को शक्तियों ने काट-छाँटकर तहस-नहस कर डाला।'

अध्याय ९०

शुम्भ-बध

ऋषि बोले—'अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे भाई निशुंभ को मरते और उसके साथ की सेना का नाश होते देखकर शुम्भ क्रोध से बावला होकर बोला—"हे दुष्ट दुर्गे! तू व्यर्थ गर्व न कर, तुझे बड़ा मान हो गया है।

पर तू तो दूसरों के बल पर युद्ध करती है। दूसरे के बल पर मत फूल।"

देवी ने हँसकर उत्तर दिया—"तीनों लोकों में केवल मैं ही मैं तो हूँ। मुझे छोड़कर दूसरा है कौन जिसके बल का मैं सहारा लूँ ? मेरी ही तो सब विभूतियाँ हैं। सब मुझ में ही तो हैं।'

'देवी के इतना कहते ही वैष्णवी, ब्रह्माणी आदि सभी शक्तियाँ उनमें समा गईं। शुंभ ने देखा, केवल एक अकेली देवी खड़ी हँस रही हैं। वह क्रोध और विस्मय से पागल होकर उन पर टूट पड़ा।'

'बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। हजारों ही तरह के दिव्य अस्त्र-शस्त्र आपस में टकरा-टकरा कर चूर्ण हो गये। कराल-कठोर शब्दों से आकाश भन्ना उठा। देवी ने शुंभ के धनुष, शूल, मुद्गर, परशु, शक्ति आदि सभी काट डाले। उसके रथ को चूर-चूर कर दिया। उसे भूमि पर गिरा दिया।'

'शुंभ ने बड़े वेग से उठकर देवी को पकड़ लिया और आकाश में उड़ गया। निराधार-निरावलम्ब दोनों आकाश में युद्ध करने लगे। अन्त में बड़े परिश्रम से उसे पकड़कर देवी ने भूमि पर फेंक दिया। शुंभ पृथ्वी पर से उठकर देवी को मारने के लिए दौड़ा। देवी ने कोप करके

एक दिव्य शूल चलाया। शूल के लगते ही शुंभ के प्राण निकल गये। वह भूमिपर गिर गया। उसके निर्जीव शरीरके गिरने से समुद्र और पहाड़ों के सहित पृथ्वी डोल गई।'

'संसार का संकट कटा। सब काम यथा-क्रम होने लगे। धर्म के मार्ग निष्कंटक हो गये। देवता प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे। गंधर्व गाने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। संसार आनन्द-मंगल से भर गया।'

—:०:—

अध्याय ९१

देवी की स्तुति

ऋषि बोले—'इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि सभी देवों के दुःख दूर हो गये। सब गद्गद होकर स्तुति करने लगे—'हे महामाया! तुम जगत् की उत्पत्ति, पालन और लय करने वाली हो। तुम्हीं पाप-ताप हरने वाली, कल्याण करने वाली हो। जड़ और चेतन सभी में तुम समारही हो। सभी तुमसे शक्ति पा रहे हैं। तुम्हारी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। तुम्हीं से भुक्ति और मुक्ति दोनों मिलती हैं। तुम्हारी ही अनेक विभूतियों के वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, इन्द्राणी आदि असंख्य रूप हैं। दानवों

से पीड़ित होने पर इस जगत् की तुम्हीं रक्षा करती हो और तुम्हीं से धर्म की स्थापना होती है। विषैले नाग, दुष्ट डाकू और चोर, भीषण दावानल आदि से पीड़ित प्राणियों की रक्षा का भार केवल एक तुम्ही पर रहता है। हे देवि! शरण में आये हुए दीन जनों को आप अभय-दान दें।"

प्रसन्न होकर देवी बोलीं—'हे देवगण! मैं प्रसन्न हूँ। जो इच्छा हो, वरदान माँगो।"

देवगण ने विनीत भाव से कहा—'हे बैरियों का नाश करने वाली महामाया! यह वरदान दीजिये कि आप सब लोगों की सब प्रकार की बाधा दूर करने में तत्पर रहेंगी।"

देवी ने कहा—"आगे चलकर ये दैत्य शुम्भ-निशुम्भ फिर जन्म लेकर उत्पात करेंगे। इन्हें नाश करने के लिये मैं नन्द के घर में यशोदा के गर्भ से प्रकट होऊँगी और विन्ध्याचल में वास करके दानवों का नाश करूँगी। तब संसार में विन्ध्यवासिनी के नाम से प्रख्यात होऊँगी। इसके अनन्तर मैं संसार को कष्ट देने वाले विप्रचित्ति राक्षसों का भक्षण करूँगी, उससे मेरे दाँत रक्तवर्ण के हो जायँगे, तब मुझे लोग रक्तदन्तिका कहेंगे। फिर सौ वर्ष की अनावृष्टि के समय मुनियों की प्रार्थना से मैं शताक्षी के नाम से प्रकट होकर लोगों का कल्याण करूँगी। अन-

न्तर शाक-पात से लोगों की रक्षा करूँगी। इससे लोग मुझे शाकंभरी के नाम से स्मरण करेंगे। उस समय मैं दुर्गम नाम के महा असुर को मारूँगी और दुर्गा देवी के नाम से लोग मुझे भजेंगे। अनन्तर मैं हिमालय पर भीष्म रूप से मुनियों की रक्षा करूँगी। तब लोग मेरी पूजा भीमा देवी के नाम से करेंगे। और जब भ्रमरासुर तीनों लोकों को कष्ट देगा तब उसे मैं भ्रामरी देवी के रूप से प्रकट होकर मरूँगी। इस प्रकार जब-जब बाधा,विघ्न आयँगे तब-तब अनेक रूप धारण कर मैं सबकी रक्षा करूंगी।'

अध्याय ६२

देवी-माहात्म्य, वर, देवी के विभिन्न रूप

देवी बोलीं—"मेरी इस स्तुतिसे जो कोई भी मुझे संतुष्ट करेगा और एकाग्रमन से भजेगा उसकी सभी बाधाओं को मैं निश्चय ही दूर करूँगी। अष्टमी, चौदस और नौमी को जो कोई मधु-कैटभ का नाश, महिषासुर-घात और शुंभ-निशुंभ-वध एकाग्रमन से शान्त होकर सुने या पढ़ेगा और मेरे माहात्म्य को श्रद्धा-भक्ति से समझेगा उस पर कोई भी बाधा-विघ्न,संकट-आपत्ति, विपत्ति, रोग, शोक,

दारिद्र, क्लेश न आयेगा। उसे किसी भी प्रकार का भय और पीड़ा न होगी। श्रद्धा-पूर्वक जो इसका मनन और पाठ करेगा उसे सब तरह का सुख, सौख्य, धन, ऐश्वर्य प्राप्त होगा और मैं उसका साथ कभी न छोड़ूँगी। जो मेरे युद्ध के पराक्रम को सुनेगा वह निर्भय हो जायगा और उसके शत्रु नष्ट हो जायँगे। कैसे भी दुःख, शोक, ग्रह, स्वप्न, प्रेतादि पीड़ा, रोग, व्याधि विघ्न हों, वे सब मेरे माहात्म्य के पाठ से शान्त हो जायेंगे।"

ऋषि बोले'–इतना कह कर देवी सबके देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गईं। कष्ट से मुक्त हो कर देवतागण अपने-अपने अधिकारों का उपभोग और आनन्द करने लगे।'

'इस प्रकार भगवती महामाया समय-समय पर प्रकट होकर संसार का संकट दूर करतीं और आनन्द-मंगल की वृद्धि करती हैं।'

ऋषि बोले–"हे राजा! इन्हीं महामाया की विभूतियाँ लक्ष्मी, तुष्टि, महाकाली, महाविद्या, महामारी, अन्नपूर्णा, ऋद्धि, सिद्धि हैं, जो समय-समय पर अपना-अपना काम करती हैं। यही महामाया स्तुति-पूजा से सन्तुष्ट होकर मनुष्य के कष्ट दूर कर देती हैं। वही इस सृष्टि को उत्पन्न करती है और प्रसन्न होने पर ज्ञान एवं ऐश्वर्य प्रदान करती है। यह सारा ब्रह्माण्ड उसी महामाया में व्याप्त है। प्रलय एवं

विनाश काल में वही आदि शक्ति महामारी आदि के रूप धारण करती है।

—:o:—

अध्याय ९३

सुरथ और वैश्य को सिद्धि, देवी-माहात्म्य समाप्त

ऋषि बोले—"हे राजा, यही महामाया जब कृपा करती हैं तब लोगों में विवेक और ज्ञान आ जाता है। उन्हीं की माया से सब मोहित हो जाते हैं। इन्हीं महामाया की उपासना करो। तुम्हारे सब संकट दूर जायँगे। आराधना करने पर वह ऐश्वर्य, स्वर्ग, मोक्ष प्रदान करती हैं।'

मार्कण्डेयजी बोले—"इस प्रकार मुनि से ज्ञान पाकर राजा सुरथ और वैश्य दोनों नदी के तीर भगवती महामाया की आराधरा करने और अपने शरीर के रुधिर की बलि देने लगे। तीन वर्ष की घोर तपस्या-आराधना के बाद महामाया ने प्रकट होकर कहा—"हे महाभाग! तुम्हारी आराधना से मैं प्रसन्न हूँ। वरदान माँगो।"

राजा ने अकंटक राज्य माँगा। वैश्य ने ममता-रहित निर्विकार, भ्रम-शून्य ज्ञान माँगा। देवी ने राजा से कहा कि तुम शीघ्र ही अपने शत्रुओं को मार कर एक-छत्र राज्य

करोगे और मरने पर सूर्य के पुत्र के रूप में प्रकट होकर सावर्णिक मनु होओगे । फिर वैश्य को तत्व-ज्ञान रूपी सिद्धि का वरदान देकर वे अन्तर्धान हो गईं ।'

'जो मनसा वाचा कर्मणा भगवती महामाया की स्तुति-पूजा-आराधना विधिपूर्वक, श्रद्धा, विश्वास और भक्ति-भाव से करेगा उसे मन चाही कामना मिलेगी । उसके सब दुःख दूर हो जायेंगे । देवी से वर प्राप्त कर राजा सुरथ सूर्य के पुत्र होकर सावर्णि मनु हुए ।

अध्याय ६९

नवम, दशम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश मन्वन्तर

मार्कण्डेय जी बोले—'हे क्रौष्टुकिजी ! मैं ने आप को भगवती का माहात्म्य सुनाया । अब भविष्य में होने वाले नवें-मनु (दक्ष के पुत्र) दक्ष-सावर्णि का वर्णन सुनिये । इस मन्वन्तर में पारा, मरीचि, भार्गव, सुधर्मा, नामक देवताओं के बारह-बारह गण होंगे; वनूहिपुत्र कार्तिकेय अद्भुत नामक इन्द्र होंगे; मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान, द्युतिमान, सबल, हव्यवाहन, नामक सप्तर्षि होंगे; धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, आर्चिष्मान, आदि मनु-पुत्र होंगे ।'

'ब्रह्मा के पुत्र धीमान दसवें मनु होंगे। इस मन्वन्तर में सुखासीन एवं निरुद्ध नामक देवता होंगे जिन की संख्या सौ होगी; शान्ति नामक इन्द्र; आपोमूर्ति, हविष्मान, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वाशिष्ठ नामक सप्तर्षि होंगे; सुक्षेत्र, उत्तमौजा आदि मनु-पुत्र होंगे।'

धर्म-पुत्र सावर्णि ग्यारहवें मनु होंगे। इस मन्वन्तर में विहंग-काम, कामग, निर्माण-रति नामक देवताओं के तीस-तीस गण होंगे; वृष नामक इन्द्र होंगे; हविष्यमान् वरिष्ट आदि सप्तर्षि और सर्वत्रगार, सुशर्मा आदि मनु-पुत्र होंगे।'

'रुद्र-पुत्र-सावर्णि बारहवें मनु होंगे। उस मन्वन्तर में सुधर्मा, सुमनस आदि पाँच प्रकार के देवताओं के दस-दस गण; ऋतधामा नामक इन्द्र; द्युति, तपस्वी आदि सप्तर्षि और देववान, देवश्रेष्ठ आदि मनु-पुत्र होंगे।'

'तेरहवें मन्वन्तर में रौच्य नामक मनु; सुधर्मा, सुकर्मा, सुशर्मा देवता; दिवस्पति नामक इन्द्र; धृतमान, अव्यय आदि सप्तर्षि; चित्रसेन, विचित्र आदि मनु-पुत्र होंगे।'

अध्याय ९५-९८

रुचि से पितरों का विवाह माहात्म्य कहना; मालिनी से विवाह, रौच्य-मनु, पितरों का दिव्य स्तोत्र

मार्कण्डेयजी बोले—'पूर्वकाल में प्रजापति रुचि ममता-अहंकार को त्यागकर विमुक्त-संग हो पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे। उन्हें जो थोड़ा-बहुत मिल जाता उसी को एकबार खाकर संतुष्ट रहते। उनकी इस विरक्ति को देख, पितरों ने प्रकट होकर कहा—'तुम विवाह कर पुत्रोत्पत्ति रूपी पुण्य क्यों नहीं करते? विवाह ही स्वर्ग और मोक्ष का कारण होता है। बिना विवाह के मनुष्य बन्धन से नहीं छूट सकता। गृहस्थाश्रम में रहकर ही मनुष्य देव, पितर, अतिथि, भूत आदि को संतुष्ट कर सकता है और पुत्र को उत्पन्न कर पितरों को नरक से बचा सकता है। गृहस्थ की ही सद्गति प्राप्त हो सकती है। विवाह न करने से तुम मरने पर नरक में जाओगे और दूसरे जन्मों में भी दुःख भोगोगे। पितरों को नरक से बचाने और स्वयं सद्गति प्राप्त करने के लिए विवाह करना आवश्यक है।'

रुचि बोले—'विवाह से चिन्ता, दुःख, क्लेश की प्राप्ति होती है। मुक्ति तो मन को संयतकर आत्मज्ञान प्राप्त करने से होती है, न कि विवाह से। विवाह से तो मनुष्य

और अधिक दृढ़ बन्धन और घोर चिन्ता में पड़ जाता है। विवाह न करने से वैसी चिन्ता नहीं रहती, मनुष्य आत्मा का मनन कर मोक्ष प्राप्ति के साधन में सरलता से लग सकता है।'

पितर बोले—'यह ठीक है कि इन्द्रियों को जीतकर आत्मा को शुद्ध किया जाता है। किन्तु जो देव, पितर, ऋषि ऋण मनुष्य पर रहते हैं उनसे उऋण हुए बिना, एवं इन्द्रियों को उचित अवसर दिये बिना न तो इन्द्रियों को जीता ही जा सकता और न आत्मा को शान्ति ही मिल सकती। शुभ-अशुभ कर्म भोगने से ही क्षय को प्राप्त होते हैं। कर्मों के फल की इच्छा न करने से किसी भी कर्म से बन्धन नहीं होता। जो संग-त्यागकर विहित कर्म करते हैं वे बन्धन में नहीं पड़ते। विहित कर्मों से तो पापों का क्षय ही होता है और विहित कर्मों को न करने से पाप लगता है। विहित कर्मों के फल की इच्छा त्याग करते रहने से अविद्या भी उसी प्रकार लाभदायक होती है जैसे शोधा हुआ विष अमृत का काम करता है। विहित कर्मों के छोड़ देने से विद्या, ज्ञान आदि भी बन्धन के कारण होते हैं। इस कारण तुम विवाहकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो और पुत्रोत्पत्ति एवं विहित कर्मों द्वारा पितरों का एवं अपना कल्याण करो।

रुचि-'मैं वृद्ध और निर्धन हूँ, मुझे कौन अपनी कन्या देगा ? मेरा विवाह दुष्कर है।'

'पितर यह कहकर अदृश्य होगये कि यदि हमारा कहना मानोगे तो तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा। और तुम्हारी सद्गति होगी, और यदि इस प्रकार हठ करोगे तो तुम अधोगति को प्राप्त होओगे। प्रजापति रुचि स्त्री की चिन्ता में घूमने लगे। जब उन्हें कोई स्त्री न मिली, तब वे खिन्न होकर तप करने लगे। ब्रह्माजी ने प्रकट होकर कहा कि तुम विवाह करो और गृहस्थाश्रम द्वारा सद्गति प्राप्त करो, पितरों की आराधना से तुम्हें उत्तम स्त्री प्राप्त होगी। रुचि नदी किनारे भक्ति-भाव से पितरों की आराधना करने लगे। उनकी आराधना-स्तुति से प्रसन्न होकर दिव्य तेज रूप में पितरगण प्रकट हुए और बोले कि हम प्रसन्न हैं, तुम्हें शीघ्र ही एक सुन्दरी स्त्री प्राप्त होगी जिससे तुम रौच्य नामक पुत्र उत्पन्न करोगे। रौच्य को मनु की पदवी प्राप्त होगी। तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करोगे और उस अधिकार के क्षीण होने पर तुम सिद्ध हो जाओगे। जिस स्तोत्र से तुमने हमारी स्तुति की है उसे पाठ करने से मनुष्य मनचाहे फल प्राप्त करेंगे। श्राद्ध के समय इस स्तोत्र के पढ़ने से पितरों को अक्षय शान्ति एवं तृप्ति प्राप्त होगी।'

'पितरों के अन्तर्धान होने पर कुछ समय उस नदी से प्रम्लोचा नामक सुन्दरी अप्सरा प्रकट हुई और रुचि के समीप जाकर बोली कि मेरी मालिनी नामक एक रूपवती, सुशीला कन्या है। वह वरुण के पुत्र महात्मा पुष्कर के सहयोग से उत्पन्न हुई है। मैं उसका विवाह आपसे करना चाहती हूँ। रुचि बहुत प्रसन्न हुए। मालिनी से उनका विधिपूर्वक विवाह होगया। उनके यथा समय रौच्य नामक परम तेजस्वी पुत्र हुआ, जो मन्वन्तर का स्वामी हुआ।'

अध्याय ६६-१००

भौत्य-मनु; अग्नि द्वारा वर, मन्वन्तरों की कथा के फल

मार्कण्डेयजी बोले-'भूति नामक ऋषि अंगिरा महर्षि के पुत्र थे। वे बड़े कटुवादी और क्रोधी थे। उनके क्रोध से मनुष्य तो क्या देवता भी डरते थे। उनके आश्रम में सूर्य बहुत न तपते,वायुदेव तेजी से न बहते,मेघ इतना जल न गिराते कि कीचड़ हो जाय, चन्द्रमा अति शीत न करते, ऋतुएँ अपना क्रम भूलकर सदा उनके आश्रम में फल-फूलों का भरमार किये रहतीं, जल सदा भरा रहता। इतने पर भी भूति ऋषि सदा क्रोध में भरे रहते। उनके पुत्र न था।

उन्होंने पुत्र के लिए तप किया, पर उनकी अभिलाषा पूरी न हुई। उन्होंने तप छोड़ दिया। इसी बीच में उनके भाई सुवर्चा के यहाँ यज्ञ हुआ। भूति अपने शान्ति नामक शिष्य को अग्निशाला की देख-रेख का भार सौंपकर अपने भाई के यज्ञ में गये। शिष्य से कहते गये कि मेरे अग्निहोत्र की अग्नि शान्त न होने पावे।

'शान्ति बड़ी तत्परता से कार्य करने लगे। उन्हें सदा यही भय लगा रहता कि कहीं अग्नि शान्त न हो जाय। किन्तु दैवयोग से एकबार जब वे वन से फल-फूल-समिधा लेने गये थे उस समय सहसा अग्नि शान्त हो गई। लौट कर शान्ति ने देखा। उन्हें बड़ा भय लगा। समझ लिया कि कुशल नहीं है। गुरुदेव आकर भस्म कर डालेंगे। पहले सोचा, दूसरे स्थान से नई अग्नि लाकर स्थापित कर दें। फिर सोचा, गुरुदेव त्रिकालज्ञ हैं, इस छल से तो और भी अधिक कुपित होंगे। अन्त में हारकर उन्होंने अग्निदेव को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति-आराधना प्रारम्भ की। उनके स्तोत्र से प्रसन्न होकर अग्निदेव ने प्रकट होकर वर माँगने के लिए कहा। शान्ति ने भक्ति-भाव से प्रणामकर स्तुति करते हुए कहा—'यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे गुरु अपने अग्निहोत्र की अग्नि वैसी ही प्रज्वलित देखें; उनके एक गुणवान पुत्र हो और सभी जीवों

पर उनका कोमल-स्नेह युक्तभाव रहे।'

अग्निदेव ने कहा—'तुमने अपने लिए कुछ भी नहीं माँगा, इससे मैं तुमपर और भी अधिक प्रसन्न हूँ। तुम्हारी प्रत्येक कामना पूर्ण होगी। तुम्हारे गुरु के भौत्य नामक परम प्रतापी पुत्र होगा, जो मन्वन्तर का अधिपति होगा। मेरे इस स्तोत्र से जो स्तवन करेगा उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

वर देकर अग्निदेव अदृश्य होगये। भूति ऋषि के अग्नि-होत्र की अग्नि फिर पूर्ववत प्रज्वलित हो गई। जब ऋषि अपने भाई के यहाँ से लौटे तब उन्होंने अग्नि को प्रज्व-लित देख, प्रसन्न हो शान्ति से कहा—'मैं तुम्हारी तत्परता से बहुत प्रसन्न हूँ। न जाने क्यों मेरा क्रोधी स्वभाव एक दम बदल गया है। अब मुझे सबसे प्रेम हो गया है, सबके प्रति दया, समता हो गई है।'

शान्ति ने नम्रता पूर्वक सब वृतान्त सुना दिया गुरु ने प्रसन्न होकर शिष्य को वेद, शास्त्र, योग आदि का ज्ञान प्रदान किया। गुरु के भौत्य नामक पुत्र हुआ जो मनु की पदवी को प्राप्त हुआ। इस मन्वन्तर में शुचि नामक इन्द्र; चाक्षुप, पवित्र आदि देवताओं के पाँच गण; अग्नीध्र, शुक्र आदि सप्तर्षि; गुरु, गम्भीर, ब्रीमाणी आदि मनु-पुत्र होंगे।

'चौदह मन्वन्तरों की कथा सुनने से मनुष्य को विभिन्न

फल प्राप्त होते हैं। स्वायंभुव मन्वन्तर की कथा से धर्म-सिद्धि; स्वारोचिष की कथा से कामना-सिद्धि; औत्तम से धन; तामस से ज्ञान; रैवत से बुद्धि-स्त्री; चाक्षुष से आरोग्य; वैवस्वत से बल; सूर्य-सावर्णि से गुणवान पुत्र; ब्रह्मसावर्णि से यश, प्रभुत्व; धर्म-सावर्णि से सद्गति; रुद्र-सावर्णि से विजय, धर्म-सावर्णि से श्रेष्ठता, रौच्य-सावर्णि से शत्रु पर प्रभाव; भौत्य मन्वन्तर की कथा सुनने से देवताओं की प्रसन्नता प्राप्त होती है। प्रत्येक मन्वन्तर के देवता इन्द्र, ऋषि आदि के चरित्रों को सुनने से अनेक उत्तम फल मिलते हैं।

अध्याय १०१-१०३

सृष्टि का आदि; ही सूर्य; दक्ष की उत्पत्ति; सूर्य सर्व-वेद, सर्वदेव मय; ब्रह्मा की स्तुति से सूर्य का तेज कम।

क्रौष्टुकिजी ने राजवंश की कथा पूछी। मार्कण्डेयजी बोले—'ब्रह्माजी जिस वंश के आदि पुरुष हैं उस प्रख्यात वंश में मनु, इक्ष्वाकु, भगीरथ आदि हजारों धर्मात्मा, न्याय-प्रिय, प्रजा पालक प्रतापी राजा हुए। आदि काल में ब्रह्माजी ने अपने पैर के दाहने अँगूठे से प्रजापतिदक्ष को और बायें पैर के अँगूठे से दक्ष-पत्नी को उत्पन्न किया।

दक्ष ने सृष्टि के विचार से अदिति नामक कन्या उत्पन्न की। कश्यप ने अदिति से सूर्य की उत्पत्ति की। ब्रह्माजी ने सृष्टि के विचार अपने वरप्रद स्वरूप को प्रकट किया, जिसमें यह सब जगत स्थित है। पूर्व काल में अन्धकार पूर्ण जगत में एक तेजोमय अण्ड प्रकट हुआ जिससे ब्रह्मा जी प्रकट हुए। तभी प्रकाश हुआ। ब्रह्माजी के मुख से ऊँ एवं भूः, भुवः, स्वः नामक व्याहृतियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये ही भगवान सूर्यदेव के रूप हैं। ऊँकार रूप सूर्य भगवान के सूक्ष्मरूप से स्थूल महान की उत्पत्ति हुई। और उससे स्थूलतर जन की एवं तप और सत्य की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के पूर्व मुख से लाल रंगवाली रजोगुण युक्त ऋगवेद की ऋचाएँ उत्पन्न हुईं; दक्षिण मुख से स्वर्ण के रंगवाली सतोगुण युक्त यजुर्वेद की ऋचाएँ प्रकट हुईं; पश्चिम मुख से तमोगुण युक्त वाली सामवेद की ऋचाएँ निकलीं; उत्तम मुख से सतोगुण-तमोगुणयुक्त कृष्ण वर्णवाली अथर्ववेद की अभिचार मूलक ऋचाएँ प्रकट हुईं। उनके तेज से ऊँ का तेज सम्मिलित हो गया, जिससे अन्धकार का नाश हो गया और उस सामूहिक तेज ने आदित्य भगवान का रूप धारण किया। उन्हीं से संसार की उत्पत्तिः पालन और नाश होता है। सूर्य सर्व वेदमय हैं। ऋग-तेज प्रातःकाल, यजु-तेज

मध्याह्न में और साम-तेज अपराह्न में तपित होता है। शान्ति-कर्म प्रातःकाल, पौष्टिक-कर्म मध्याह्न में और अभिचार-कर्म संध्या समय करने से अधिक फल देते हैं। सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा रजोगुण युक्त ऋग्-तेजमय हैं, पालन करनेवाले विष्णु सतोगुणी यजुः-तेजमय और संहार करने वाले रुद्र तमोगुणी साम-तेजमय हैं। इस प्रकार सूर्य भगवान ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र रूप सर्व वेदमय हैं।'

मार्कण्डेयजी बोले—'सूर्य भगवान के जाज्वल्यमान तेज को देखकर ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि इस तेज से तो सभी प्राणियों का नाश हो जायगा, सबको जीवन देनेवाला जल एकदम सूख जायगा। सृष्टि के नाश की आशंका से भयभीत हो ब्रह्माजी ने भक्ति-भाव से सूर्य भगवान की स्तुति आरम्भ की। स्तुति-आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने अपने तेज को कम कर दिया। सृष्टि का क्रम चलने लगा।

—:०:—

अध्याय १०४-१०५

सृष्टि, कश्यप से देव-दानव की उत्पत्ति, सूर्य अदिति के पुत्र।

मार्कण्डेयजी बोले—'ब्रह्माजी ने पूर्वकाल की तरह सृष्टि उत्पन्न कर वर्णाश्रमों की स्थापना की; समुद्र द्वीप आदि

की कल्पना की, एवं देवता, राक्षस, मनुष्य आदि की रचना की। उनसे मरीचि, उनसे कश्यप की उत्पत्ति हुई। कश्यप ने दक्ष की तेरह कन्याओं में विभिन्न प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की। अदिति से देवताओं को, दिति से राक्षसों को, दनु से दानवों को, विनता से गरुण-अरुण को, खसा से यक्षों राक्षसों को, कद्रु से नागों को, मुनि से गंधर्वों को, क्रोधा से अप्सराओं को, दूरा से ऐरावत आदि गजों को, ताम्रा से पक्षियों को, इला से वृक्षों को, तथा अन्य स्त्रियों से अन्य प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न कर कश्यपजी ने संसार को भर दिया। दानवों-दैत्यों ने देवताओं से शत्रुता मानकर घोर युद्ध किया और सौ वर्षों के निरंतर संग्राम के बाद उन्हें पराजित कर सभी सुखों-अधिकारों से अलग कर दिया।

'अपने पुत्रों को संकट में पड़ा हुआ देख उनकी माता अदिति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पुत्रों के कल्याण के लिए सूर्य भगवान की आराधना की। सूर्यदेव ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। अदिति ने प्रार्थना की कि आप मेरे पुत्रों के कष्टों को दूर कीजिये। सूर्यदेव ने कहा कि मैं तुम्हारे गर्भ से जन्म लेकर देवों के सारे संकट दूरकर दूँगा। कुछ काल बाद कश्यपजी के तेज से अदिति के गर्भ रह गया। उन्हें कठिन व्रत, उपवास करते देख

कश्यपजी ने कहा कि क्या तुम पेट के बालक को उपवास करके मार डालना चाहती हो ? अदिति ने गर्भ के तेज को दिखलाकर कहा कि इन्हें संसार में कोई भी नहीं मार सकता। कश्यपजी ने भगवान सूर्य को अपने यहाँ अवतरित होते देख उनकी स्तुति-पूजा की। यथा समय सूर्यदेव मार्तण्ड नाम से प्रकट हुए। देवगण ने बड़ा आनन्द मनाया। कुछ काल बीतने पर मार्तण्ड भगवान ने अपने तेज से दैत्य-दानवों को भस्म कर डाला। देवता फिर अपना-अपना अधिकार प्राप्तकर सुखी हुए। भगवान मार्तण्ड भी तीनों लोकों का कल्याण करने लगे।

अध्याय १०६-१०८

संज्ञा का तप,छाया का यम को शाप,सूर्य का तेज कम किया गया।

मार्कण्डेयजी बोले—'प्रजापति विश्वकर्मा ने अपनी सुन्दरी कन्या संज्ञा का विवाह सूर्य भगवान विवस्वान से कर दिया। संज्ञा के वैवस्वत मनु, यम और यमुना की उत्पत्ति हुई। संज्ञा सूर्य देव के प्रचंड तेज को न सह सकती थी, इस कारण उसने अपने शरीर की छाया को अपना रूप देकर अपने स्थान पर सूर्य देव की सेवा के लिए छोड़ दिया

और वह (संज्ञा) स्वयं अपने पिता विश्वकर्मा के यहाँ चली गई। वहाँ कुछ काल रहने के बाद संज्ञा कुरुक्षेत्र में जाकर घोड़ी के रूप में अपने पति के तेज को कम कराने के उद्देश्य से घोर तप करने लगी।'

'इधर छाया के सूर्य देव से सावर्णि मनु एवंशनैश्चर नामक पुत्र और तपती नामक कन्या का जन्म हुआ। छाया अपने पुत्र-कन्या से अधिक स्नेह करती और यम, यमुना को कष्ट देती। इस दुर्व्यवहार को न सह-सकने के कारण एक दिन यम ने छाया को मारने के लिए पैर उठाया पर मारा नहीं। छाया ने शाप दिया कि तेरा पैर गिर जाय। यम ने सूर्य देव से शाप और दुर्व्यवहार की सारी बातें कह दीं। सूर्यदेव ने छाया को धमका कर पूछा कि तू कौन है? भय के कारण उसने सब हाल बतला दिया। सूर्य देव विकल हो कर संज्ञा को खोजने के लिए विश्वकर्मा जी के यहाँ गये। वहाँ उन्हें अपने असह्य तेज का तथा संज्ञा के तप का हाल मालूम हुआ तो वे बहुत दुःखी हुए अवसर देखकर विश्वकर्मा ने उनसे प्रार्थना की कि मैं आप के तेज को कम कर दूँ तो सबका कल्याण हो। सूर्य देव राजी हो गये। विश्वकर्मा ने उन्हें चक्र पर स्थापित कर उनके शरीर को सुडौल कर दिया और कुछ अंश निकाल कर उनके तेज को घटा दिया। उस समय सूर्य देव को प्रसन्न

रखने के लिए देव गण ने दिव्य स्तुति की, गंधर्व गायन करते रहे, अप्सराएँ नृत्य करती रहीं, ऋषि-मुनि ऋचाओं का पाठ करते रहे। विश्वकर्मा ने सूर्यदेव के तेज को घटा कर कम करदिया। उनका शरीर सुडौल हो गया। विश्व-कर्मा ने उनकी मधुर छन्दो से अस्तुति की। सूर्य के तेज के १५ भाग निकाल कर विश्वकर्मा ने उनके अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र आदि रचे। सोलहवें अंश से सूर्य भगवान ज-गत का कल्याण करने लगे।'

'सुन्दर रूप धारण कर सूर्य देव अपनी पतिव्रता पत्नी संज्ञा को खोजने चले। कुरुक्षेत्र में उसे घोड़ी के रूप में तप करते देख उन्होंने घोड़े का रूप रखकर उससे भेंट की। घोड़े के रूप से उन्होंने उसके नथुनों से अपने नथुने रगड़े थे। इस से नासत्य दस्त्रौ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए जो बाद में आश्विनी कुमारों के नाम से देव गण के वैद्य हुए। सूर्य के अंश से उसी समय एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो रेवन्त के नाम से गुह्यकों का राजा हो गया। सूर्यदेव ने अपने दिव्य रूप को प्रकट कर संज्ञा को मनाया और उसे लेकर वे अपने लोक को चले गये।'

'यम के शाप को उन्होंने बदलते हुए कहा कि तुम्हारा पैर गिरेगा तो नहीं, पर इसमें पड़ जायँगे, और जब ये क्रिमि तुम्हारे मांस को पृथ्वी पर ले जायँगे तब तु-

म्हारा शाप दूर हो जायगा। यम को सबके कर्मों का निर्णय करने और उसके अनुसार फल देने का अधिकार मिला। सावर्णि मनु इस पर्वत पर तप कर रहे हैं।'

—:०:—

अध्याय १०९-११०

सूर्य देव महात्म्य; राज्यवर्द्धन को प्रजा सहित दीर्घायु।

क्रौष्टुकिजी ने सूर्य नारायण का महात्म्य सुनना चाहा। मार्कण्डेयजी बोले—'सूर्य भगवान की आराधना से सभी दुर्लभ वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं। पूर्वकाल में राजा दम के पुत्र राज्यवर्द्धन प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। उनके राज्य में सभी की सभी प्रकार की कामनाएँ पूर्ण हो जाती थीं। किसी प्रकार का कष्ट, दुःख, दैन्य, रोग, शोक न था। छोटे-बड़े सभी अत्यधिक सुखी और संतुष्ट थे। दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पतिव्रता कन्या से राज्य-वर्द्धन का विवाह हुआ था। एक बार रानी ने राजा के सर पर एक श्वेत बाल देख कर बड़ा सोच किया। जब राजा को रानी की चिन्ता का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने हँस कर कहा—'तुम व्यर्थ में सोच करती हो। हम पृथ्वी के सभी सुखों को भोग चुके हैं। जो भी दान, यज्ञ, शुभ कार्य थे उन्हें हम कर चुके हैं। इस सफेद बाल को तो

मृत्यु का अग्रदूत समझ कर तप द्वारा मोक्ष साधन का उपाय करना चाहिये।'

राजा के वन जाने का विचार करते देख मंत्री, सामन्त, प्रजा, पुरजन ने उनसे प्रार्थना की कि आप वन में जाकर फल को प्राप्त करेंगे उससे अनेक गुणा पुण्य आप को धर्म पूर्वक प्रजा-पालन में राज्य करते हुए होगा, क्यों कि यदि आप वन को चले जायँगे, तो यहाँ प्रजा को वैसा सुख, वैसी शांति न मिलेगी जैसी आप के शासन में मिलती है पर राजा ने अपना विचार न छोड़ा। उन्होंने राजकुमार को गद्दी पर बैठालने के लिए पंडितों से शुभ मुहूर्त पूछा। किन्तु कोई पंडित मुहूर्त बतलाने के लिए तैयार न हुआ। तब उन्होंने अन्य स्थानों से पंडितों को बुलाया। पर जब उन्हें राजा के वन जाने का पता चला तब वे भी मुहूर्त न बतला सके। पंडितों ने आपस में विचार किया कि किसी प्रकार राजा की आयु बढ़वा दी जाय तो सभी का कल्याण हो, और राजा वन न जायँ, सुदामा नामक गंधर्व ने पंडितों से कहा कि आयु तो सूर्य भगवान की आराधना करने से ही बढ़ सकती है। सब पंडित मिलकर विधि पूर्वक सूर्य भगवान की आराधना करने लगे। तीन मास के उग्र तप, आराधना, स्तुति, व्रत के बाद मार्तण्ड भगवान ने प्रकट होकर वर दिया कि

राजा दस हजार वर्ष तक जीवित रहेंगे, उनकी युवावस्था भी स्थिर होगी। वर पाकर पंडितों ने राजा से जाकर कहा कि अब आप वन न जायँ, आपकी आयु दस हजार वर्ष और बढ़ गई है।

ब्राह्मणों की बात सुनकर राजा उदास होगये। रानी ने इसका कारण पूछा। राजा ने कहा कि मैं तो सूर्य भगवान के वर के कारण जीवित रहूँगा किन्तु तुम लोग सब तो उतने दिन तक न रहोगे, इस कारण इतने दिन जीने में मुझे क्या सुख मिलेगा? यदि मेरे साथ तुम सभी की आयु उतनी ही बढ़ जाय तो मैं सुख से राज्य कर सकता हूँ। बहुत सोच-विचार के अनन्तर राजा-रानी ने प्रजा, मंत्री, सामन्त, पुरजन आदि की आयु के लिये सूर्य भगवान की आराधना की। एक वर्ष के घोर तप, आराधना, स्तुति के अनन्तर सूर्यदेव ने राजा को मनचाहा वर दिया। राजा महलों में लौट आये। सबकी आयु के बढ़ जाने से राज्यभर में आनन्द-उत्सव मनाये गये। भगवान सूर्यदेव की कृपा से सभी सुलभ हो जाता है।'

अध्याय १११-११२

मनु के इला-सुद्युम्न (कन्या-पुत्र) राजा के स्त्री-रूप से पुरुरवा का जन्म; राजा से शूद्र, क्रोध से हानि।

मार्कण्डेयजी बोले—'सूर्य भगवान ही सब की उत्पत्ति करते हैं, संसार का पालन करते हैं और उन्हीं में सब लय हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों उन्हीं के भिन्न-भिन्न रूप हैं। सूर्य के पुत्र मनु हुए। मनु ने इक्ष्वाकु, नाभाग, पृषध्र, धृष्ट, नाभग, रिष्ट, नरिष्यन्त नामक सात महापराक्रमी पुत्रों को उत्पन्न किया और उन्हें विभिन्न प्रदेशों का राज्य दे दिया। फिर मनु ने पुत्र की कामना से मित्रावरुण का यज्ञ किया। यज्ञ के कारण उनके इला नामक पुत्री ने जन्म लिया। मनु ने मित्रावरुण को सन्तुष्ट कर कहा कि आप इसी कन्या को पुत्र कर दीजिये। देवताओं की कृपा से कन्या ने सुद्युम्न नामक पुत्र का रूप प्राप्तकर लिया। एकबार राजा सुद्युम्न वन में शिकार खेलने गये। संयोग से वे उस वन में जा पहुँचे जिसमें जाने से शिवजी के शाप से पुरुष स्त्री हो जाते थे। वन में जाते ही सुद्युम्न स्त्री हो गये। चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसी अवस्था में उनसे पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया। स्त्रीत्व को दूर करने का उपाय कर वे फिर पुरुषत्व को प्राप्त हो गये। पुरुष होने पर

उन्होंने उत्कल, विनय, गय तीन प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये, जिन्हें उन्होंने विभिन्न देशों के राज्य दे दिये। वशिष्ठजी के कहने से उन्होंने अपने पुत्र पुरुरवा को प्रतिष्ठानपुर का राज्य दिया।'

'मनु के पुत्र राजा पृषध्र एकबार वन में शिकार खेलने के लिए गये। बहुत समय बीतने और दूर तक खोजने पर भी उन्हें कोई शिकार न मिला। वे भूख, प्यास और थकावट से घबरा उठे। इसी समय उन्हें एक गाय देख पड़ी। राजा ने उसे गवय (नील गाय) समझकर उसपर बाण चला दिया। वह बाण से बिद्ध होकर गिर पड़ी और तड़प-तड़प कर मर गई। असल में वह मौलि ऋषि की गाय थी। मुनिपुत्र बाभ्रव्य उसकी देख रेख करता था। गाय को मरी हुई देख मुनिपुत्र ने क्रोधकर राजा को शाप दिया कि तू शूद्र होजा। इसी समय ऋषि वहाँ आगये और पुत्र को शान्त कर बोले—'क्रोध ब्राह्मण का सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध के कारण लोक-परलोक दोनों का ही नाश होता है। क्रोध से ज्ञान, धन, धर्म, विवेक, सुख सभी का नाश हो जाता है। क्रोधी को कभी सुख नहीं मिलता। राजा ने धोखे से गवय जानकर ही इस पर बाण छोड़ा था। धोखे से जो अपराध हो जाता है उसके लिए दया ही करना चाहिए। जो ज्ञानी धोखे से किये हुए पाप के

लिए दण्ड दे उससे तो अज्ञानी श्रेष्ठ माना जाता है।'

राजा ने अपने अपराध के लिए क्षमा चाही, पर मुनि-पुत्र के वचन असत्य न किये जा सके। राजा को तत्काल शूद्र हो जाना पड़ा।

अध्याय ११३-११६

नाभाग का वैश्य कन्या से विवाह करने के कारण
वैश्य होना, सुदेव को शाप, वैश्य-पुत्र क्षत्रिय,
भनन्दन, सुनन्द मूसलाख।

मार्कण्डेयजी बोले—'करूष के पुत्रों से हजारों क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई। दिष्ट के पुत्र नाभाग अपने प्रथम यौवन-काल में एक सुन्दरी वैश्य-कन्या को देखते ही उस पर आसक्त हो गये। जब किसी तरह उस कन्या के बिना उन्हें कल न पड़ी तो वे उसके पिता के पास गये और कन्या की याचना की। वैश्य ने उन्हें समझाकर कहा की आप हमारे राजा हैं, आप हम बराबर नहीं हैं, समान न होने के कारण विवाह नहीं हो सकता।

राजकुमार ने कहा—'मनुष्यों के शरीर में काम, मोह आदि समान हैं। समय पाकर सभी के शरीर में काम

प्रबल से उठता है। और उससे प्राणी का उपकार होता है। मनुष्य की योग्यता तो समय के अनुसार होती है। कभी मनुष्य योग्य माना जाता है, कभी अयोग्य। समय की स्थित पर सब अवलम्बित है। समानता, असमानता कोई निश्चित बात नहीं है। जिस तरह भोजन आदि देकर शरीर की रक्षा करनी चाहिए उसी तरह अन्य व्याधियों एवं उपद्रवों से भी उसकी रक्षा करना चाहिए। यदि मुझे आपकी कन्या की प्राप्ति न होगी तो मेरा शरीर विपत्ति में पड़ जायगा।

वैश्य ने कहा कि यदि आप के पिता आज्ञा दे दें तो मुझे कन्या देने में कोई आपत्ति न होगी। कुमार ने कहा कि सभी बातों को गुरुजनों के सम्मुख नहीं रखना चाहिए। वैश्य न माना, उसने जाकर सब बातें राजा से बतला दीं। राजा ने ऋचीक आदि ऋषियों को बुला कर व्यवस्था माँगी। ऋषियों ने आपस में विचार कर कहा कि कुमार पहले अपने जाति की किसी कन्या से विवाह कर लें, फिर वैश्य-कन्या से उनका विवाह हो सकता है। यह शास्त्र की आज्ञा है कि उच्चवर्ण के पुरुष पहले अपने वर्ण की कन्या से विवाह करने के अनन्तर फिर क्रम से अपने से हीन वर्ण की कन्याओं से विवाह कर सकता है।'

'किन्तु कुमार ने कहा कि मैं किसी भी दूसरी कन्या की तरफ देख तक नहीं सकता। फिर उन्होंने बल पूर्वक उस वैश्य कन्या का हरण किया। वैश्य ने आकर राजा से फरियाद की। राजा ने राज-धर्म समझ कर अपने ही पुत्र को दण्ड देने के लिए एक भारी सेना भेजी, किन्तु कुमार ने उसे काट डाला तब कुपित होकर राजा स्वयं युद्ध के लिए गये। दोनों में घोर युद्ध हुआ। इसी बीच में परिव्राट् मुनि ने वहाँ आकर राजा से कहा कि तुम नाभाग से युद्ध मत करो, यह वैश्य कन्या के कारण वैश्य हो गया है, इसे तुम से लड़ने का अधिकार ही नहीं रह गया है। राजा युद्ध छोड़कर चले गये। नाभाग ने वैश्य-कन्या से विवाह कर लिया। फिर वे अपने पिता के पास गये और नम्रता पूर्वक बोले कि मुझे आदेश दें, मैं क्या करूँ। राजा नें बाभ्राव्य, आदि ऋषियों से व्यवस्था देने के लिए कहा। ऋषियों ने व्यवस्था दी कि नाभाग वैश्य की तरह कृषि, गोपालन और वाणिज्य करें। नाभाग वैश्यों के कर्म करने लगे। उनके भनन्दन नामक तेजस्वी पुत्र हुआ। बड़े होने पर माता ने उसे वैश्य-कर्म करने की आज्ञा दी। पर वह हिमालय पर तप करने वाले राजर्षि नीप के पास गया और उनसे सब बातें बतला कर उनकी व्यवस्था माँगने लगा। राजर्षि ने उसे अस्त्र-शस्त्र और शास्त्रों की

शिक्षा दी और जब वह उन सब में कुशल हो गया, तब उससे कहा कि अब तुम जाकर अपने कुटुम्बियों से अपना राज्य माँगो। वह अपने चाचा आदि के पास गया, पर वे उसे राज्य देने के लिए तैयार न हुए। तब भनन्दन ने युद्ध में उन्हें हरा कर राज्य पर अधिकार कर लिया। फिर वे अपने पिता के पास जाकर बोले कि पराक्रम से प्राप्त किये हुये इस राज्य को आप भोगिये।

नाभाग बोले—'पिता तथा ऋषियों की व्यवस्था के कारण मैं वैश्य हो गया हूँ। जब तक वे मुझे बुलाकर प्रसन्नता पूर्वक क्षत्रिय न बनालें जब तक मैं राज्य नहीं ले सकता, उनकी आज्ञा के बिना राज्य लेने से मेरी कभी सद्‌गति न होगी। मैं वैश्य होने के कारण कर भी न सकूँगा। पिता की आज्ञा का उलंघन न करूँगा।'

उनकी बात सुन कर उनकी पत्नी, वैश्य-कन्या सुप्रभा बोली—'आप इस राज्य को ले लीजिये। इसमें आप को दोष न लगेगा। असल में मैं वैश्य-कन्या नहीं हूँ। मैं तो क्षत्रिय-कन्या हूँ। सुदेव नामक एक राजा थे। राजा धूम्राश्व का पुत्र नल उनका मित्र था। नल बड़ा लम्पट था। एक बार नल के साथ सुदेव वन-विहार के लिए गये। वन में स्त्रियों के साथ सब ने मद्य-पान किया। नशे में उन्हें पुष्करिणी के तीर पर एक अत्यन्त सु-

न्दरी युवती देख पड़ी वह च्यवन ऋषि के पुत्र प्रमति की स्त्री थी। नल ने युवती को पकड़ लिया। स्त्री ने चिल्लाकर रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्त्री का विलाप सुन कर प्रमति आये। देखा, राजा सुदेव बैठे हैं और उन्हीं के सामने नल स्त्री के ऊपर अत्याचार करने को उद्यत है। प्रमति ने राजा को धिक्कार कर कहा कि तुम्हारा कार्य रक्षा करना है, तुम इस प्रकार चुप कैसे बैठे रह गये? सुदेव ने उत्तर दिया कि मैं तो वैश्य हूं, मैं राजा का कार्य कैसे करता। प्रमति ने अपने तपोबल से नल को नष्ट कर स्त्री की रक्षा की। फिर सुदेव की ओर घूम कर उन्हें शाप दिया कि तुम वैश्य हो जाओ। राजा का नशा उतर गया। उन्होंने प्रमति से बहुत अनुनय-विनय की। ऋषि ने कहा कि जब एक क्षत्रिय तुम्हारी कन्या को बल पूर्वक हरण करेगा तुम फिर क्षत्रिय हो जाओगे। वे ही राजा सुदेव मेरे पिता हैं। इस प्रकार मैं असल में क्षत्रिय-कन्या ही हूँ। पूर्वजन्म में मैं कृपावती नामक ऋषि-पुत्री थी। राजर्षि सुरथ गंधमादन पर्वत पर तप कर रहे थे। एक बार उन्होंने बाज के मुख से एक शारिका को छुड़ाया। उसी के गर्भ से मेरी उत्पत्ति हुई। राजर्षि ने मेरा नाम प्रभावती रखकर पुत्री की तरह मेरा लालन-पालन किया। एक बार मैं कुछ ऋषि कन्याओं के साथ खेल रही थी।

उसी समय अगस्त्यजी के भाई उसीओर निकले। कुछ बालिकाओंने चिढ़ाया। उन्होंने सबको शाप दिया कि तू वैश्यके घर जन्म ले और तेरा हरण किया जाय। मैंने उनसे कहा कि मैंने तो आपका कोई भी अपराध नहीं किया, फिर आपने मुझे क्यों शाप दिया! ऋषिने कहा कि दुष्टों के संसर्ग में रहने से बिना अपराध किये हुए भी दण्ड मिलता है। तुम जब अपने पुत्र को बोध कराओगी तब तुम क्षत्रिय हो जाओगी। उसी शाप के कारण मैं इन बातों को भूल गई थी। अब सब स्मरण आगया। आप शंका को दूर कर राज्य ग्रहण करें।'

'नाभाग ने उत्तर दिया कि मैं इन बातों में पड़कर अपने पिता की आज्ञा का उलंघन न करूँगा, मैं तो वैश्य ही रहूँगा। तुम लोग चाहे राज्य करो चाहे छोड़ो।'

'भनन्दन ने राज्य करना आरंभ किया। उन्होंने सब पृथ्वी को जीतकर एक-छत्र चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया। उनके पुत्र वत्सप्री गुणों में उनसे भी बढ़ गये। वत्सप्री ने इन्द्र के शत्रु दैत्यराज कुजृम्भ को मारकर राजा विदूरथ की कन्या सौनन्दा से विवाह किया।'

'विदूरथ नामक एक प्रतापी राजा थे वे एकबार वन में शिकार खेलने के लिए गये। नगर के बाहर उन्हें पृथ्वी में एक बड़ा भारी गर्त (गढ़ा) देख पड़ा। वे विस्मय से वहाँ खड़े उसे देख रहे थे, इतने में एक ब्राह्मण उस ओर

से निकला। राजा ने उससे उस गर्त के सम्बन्धमें पूछा। ब्राह्मण बोला—'इस समय पाताल में एक बड़ा पराक्रमी दानव रहता है। कुजृम्भ उसका नाम है। वह देवताओं को सदा त्रास दिया करता है। विश्वकर्मा ने सुनन्द नामक एक अमोघ मूसलास्त्र की रचना की थी। दानव उस मूसलास्त्र को छीन लाया है। उसके प्रहार के सामने देवता तक नहीं ठहर सकते। उस अस्त्र के कारण वह दानव अजेय हो गया है। पर उसमें एक विशेष बात है। यदि कोई स्त्री उस अस्त्र को छू दे तो वह एकदिन के लिए शक्तिहीन हो जाता है। दानव ने आपके नगर के पास से ही रास्ता बनाया है। उसे मारे बिना आप शांति पूर्वक राज्य नहीं कर सकते। मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि आप राजनीति के ज्ञाता होकर भी इतने निकट बनाये जाने वाले इस गर्त के संबंध में कुछ नहीं जानते।'

राजा बड़ी चिन्ता में पड़ गये। वे लौटकर अपने नगर में गये और उस दानव के संबन्ध में अपने मंत्रियों से परामर्श करने लगे। इसी बीच में दानव ने एकाएक उनके नगर पर आक्रमण कर दिया और राजकन्या मुदावती का हरण कर लिया। राजा ने अपने वीर पुत्र सुमति, सुनीति को सेना के साथ दानव से लड़ने के लिए भेजा।

दानव ने सेना को नष्ट कर दोनों कुमारों को वन्दी बना लिया। राजा बड़े सोच में पड़ गये। उन्होंने घोषणा कर दी कि जो कोई दानव को मारकर कुमारी और कुमारों को छुड़ायेगा उसके साथ कुमारी का विवाह कर दिया जायगा। अनेक वीरों ने मुदावती के लिए दानव से युद्ध किया और वे उसके हाथों से मारे गये। अन्त में राजा भनन्दन के कुमार वत्सप्री ने कुमारी के पिता से आज्ञा लेकर दानव के ऊपर चढ़ाई की और घोर युद्ध के बाद उसे मार डाला। मुदावती ने मूसलास्त्र को बार-बार छू दिया था जिससे वह युद्धकाल में शक्तिहीन होगया था। दानव के मर जाने पर नागों के ईश्वर शेषजी ने उस मूसलास्त्र को ले लिया और मुदावती का नाम सुनन्दा रख दिया। वत्सप्री कुमारी और उसके भाइयों को छुड़ाकर राजा विदूरथ के पास ले गये। राजा ने उनका विवाह अपनी कन्या के साथ कर दिया। कुछ काल बाद भनन्द अपने पुत्र वत्सप्री को गद्दी पर बैठालकर वन में तप करने चले गये। वत्सप्री धर्म पूर्वक राज्य करने लगे।

अध्याय ११७-११९

वत्सप्री का वंश, अभिचार करने वालों का नाश, कूटिनीति, क्षुप

मार्कण्डेयजी बोले–'राजा वत्सप्री ने सुनन्दा से बारह बलवान पुत्र उत्पन्न किये। उनमें प्रान्शु सबसे बड़े थे। उनके प्रजाति हुए और प्रजाति के खनित्र, शौरि, उदावसु, सुनय, महारथ नामक पाँच पुत्र हुए। खनित्र बड़े प्रतापी, धीर, दानी, उदार, शान्त, सुवक्ता और परहित व्रती थे। वे सदा सबके कल्याण की चिन्ता और चेष्टा में लगे रहते। उन्होंने अपने भाइयों को पृथक-पृथक देशों का राज्य दे दिया। हरएक अपने-अपने राज्य में प्रजा-पालन करने लगे।'

'राजा शौरि का मंत्री विश्ववेदिन बड़ा कूट नीतिज्ञ था। उसने अपने राजा से कहा–'आपके बड़े भाई समस्त पृथ्वी के स्वामी हैं। आप उनके अधीन हैं। आपके अनेक पुत्र हैं। उनके भी अनेक पुत्र होंगे। उनमें जब आपका राज्य बँट जायगा तो, प्रत्येक के हिस्से में इतनी भूमि भी न पड़ेगी कि वह सुख से अपना निर्वाह कर सके, इस कारण आपके वंशजों को खेती, पशुपालन, वाणिज्य से

ही अपनी जीविका चलानी पड़ेगी। उधर आपके बड़े भाई के पुत्र सुख से राज्य करेंगे और आपके वंशजों को उनकी सेवा करनी पड़ेगी। राजा को कभी संतोष न कर लेना चाहिए। संतोष राजा के लिए नाश का कारण होता है। राज्य सब सिद्धियों का देनेवाला होता है, और राज्य के लिए प्रयत्न करना परमावश्यक है। राज्य के लिए छोटे-बड़े भाई या सुहृद का विचार न करना चाहिए क्योंकि राज्य की प्राप्ति के बाद सभी का सब तरह का उपकार किया जा सकता है। और धन-मान द्वारा सबको संतुष्ट कर लिया जा सकता है। अधिकार और राज्य ही मुख्य हैं। पृथ्वी पर उन्हीं के कारण और सभी की प्राप्ति सरलता से हो जाती है।'

मंत्री की बातें सुनकर राजा का मन बदल गया। वे मंत्रियों के साथ समस्त राज्य की प्राप्ति का उपाय करने लगे। धन, रत्न का लोभ देकर उन्होंने अपने दूसरे भाइयों के मंत्रियों, सामंतों, पुरोहितों आदि को फोड़ कर अपनी ओर मिला लिया। फिर बड़े भाई खनित्र को मारने के लिए उन्होंने अनेक पुरोहितों से अभिचार कराना प्रारंभ किया। किन्तु खनित्र के पुण्य-धर्म के कारण अभिचार उलट कर पुरोहितों पर ही पड़ा। दुष्ट मंत्री विश्ववेदि और वे पुरोहित जल कर भस्म हो गये। वे

विभिन्न स्थानों में रह कर अभिचार कर रहे थे। किन्तु सबकी मृत्यु एक ही समय में,एक ही प्रकारसे हुई। इससे सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा खनित्र ने अपने कुल गुरु वशिष्ठ जी से इसका कारण पूछा। वशिष्ठ जी ने योगबल से सब बातें राजा को बतला दीं। राजा को बड़ाक्लेश हुआ। वे अपनी निन्दा करने लगे और अन्त में राज्य से उन्हें विराग हो गया। वे अपने पुत्र क्षुप को गद्दी पर बैठाल कर वन में तप करने चले गये। क्षुप धर्म पूर्वक राज्य करने लगे। उनके मंत्रियों और पुरोहितों ने बतलाया कि पूर्वकाल में ब्रह्मा जी के पुत्र क्षुप नामक एक बहुत ही प्रतापी, धर्मात्मा, कर्म निष्ठ, दानी राजा हो गये हैं। आप उन्हीं की भाँति अपने कार्यों द्वारा पुण्य और यश प्राप्त कीजिये।'

उत्तम कर्म करते हुए राजा क्षुप धर्म और न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। उन्होंने अकाल पड़ने पर अनेक बड़े-बड़े यज्ञ कर प्रजा का पालन किया उनकी रानी ने वीर नामक प्रतापी पुत्र को उत्पन्न किया। राजावीर ने विदर्भ-राज-कन्या नन्दिनी से विविंश नामक ऐसा पुत्र उत्पन्न किया। जिसके राज्य में छोटे से-छोटे व्यक्ति के पास इतना धन-धान्य था। जिसे देख कर देवता भी ईर्ष्या करते थे पर कोई भी इस समृद्धि से मदो-

न्मत न हुआ। उनके मित्र सदा अत्यन्त प्रसन्न रहते और शत्रु सर न उठा सकते। धर्म पूर्वक राज्य करने के बाद विविंश ने अन्त में अपने यशस्वी पुत्र खनीनेत्र को गद्दी पर बैठाल दिया।

अध्याय १२०-१२१

खनीनेत्र, पुत्रवान-पुत्रहीन के दुःख-क्लेश; वालाश्व-करंधम; अवीक्षित का क्षोभ, किमिच्छक व्रत; मरुत्त का सर्व संतोषी यज्ञ; पिता-पुत्र का युद्ध, शरणागत-रक्षा।

मार्कण्डेय जी बोले—'महाराज खनीनेत्र अत्यन्त पराक्रमी हुए। उन्होंने समस्त पृथ्वी को जीत कर इतने यज्ञ किये और इतनी दक्षिणा दी कि उनके राज्य में कोई भी दान लेने वाला न रह गया। यज्ञ के अवसर पर दिये हुए धन, रत्न, स्वर्ण को ढो न सकने के कारण बहुत से ब्राह्मण वहीं छोड़ गए। बहुत आयु हो जाने पर भी जब कोई सन्तान न हुई तो खनी-नेत्र को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने पुत्र यज्ञ करने का विचार किया। यज्ञ के लिए मृग का मांस लेने वे स्वयं वन में गए। घोर वन में उन्हें एक मृग देख पड़ा। वह स्वयं राजा के पास आया और बोला कि

आप मुझे मारकर अपना कार्य साधन कीजिये, मुझे मार कर बड़ा उपकार करेंगे। राजा ने आश्चर्य से पूछा कि वन के जीव तो शिकारी को देखकर भाग जाते हैं, फिर तुम क्यों स्वतः मेरे पास आये। और इस प्रकार मरने के लिए क्यों तैयार हो, मृत्यु तो किसी को भी अच्छी नहीं लगती।

मृग बोला'—मैं निपुत्री हूँ और इस कारण मेरा जीना व्यर्थ है। आप मुझे मार डालिये, मेरा बड़ा उपकार होगा।'

उसकी बात समाप्त भी न होने पाई थी कि एक दूसरा मृग दौड़ता हुआ आया और पहले मृग को हटाकर राजा से बोला—'आप इसे न मार कर पहले मुझे मारिए। आप पुत्र के लिए यज्ञ करना चाहते हैं, यह निपुत्री है, इसके मांस से जो यज्ञ किया जायगा उससे पुत्र की प्राप्ति कैसे हो सकती। मेरे अनेक पुत्र पुत्रियाँ हैं। इस कारण मेरे मांस से यज्ञ करने में आपको तत्काल फल मिलेगा। अधिक पुत्र पुत्रियाँ होने के कारण मैं सदा उनके कल्याण की चिन्ता में व्याकुल रहता हूँ। मेरी वह चिन्ता इतनी बढ़ गई है कि मैं मर जाना ही उत्तम समझता हूँ। मैं आत्म घात कर लेता किन्तु आत्म-घात करने से घोर पाप लगता है और मनुष्य असूर्या नामक जघन्य लोकों

को प्राप्त होता है। इसके विपरीत यज्ञ में जिनकी बलि दी जाती है उन्हें उत्तम से उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। अग्नि, वरुण और सूर्य पूर्व जन्म में पशु थे। यज्ञ में इनकी बलि दी गई थी। इस कारण उन्हें ऐसे दिव्य पक्षे की प्राप्ति हुई। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे तत्काल वध कर डालिए; मुझे उत्तम गति प्राप्त होगी और आप को पुत्र। जब मैं अकेला था तब मुझे केवल अपने शरीर की ही चिन्ता थी, जब स्त्री आई तब मेरी चिन्ता दूनी हो गई। फिर जैसे-जसे पुत्र-पुत्रियों की संख्या बढ़ती गई वैसे ही वैसे मेरी चिन्ता भी बढ़ती गई और अब एक क्षण भी शान्ति नहीं मिलती, इस कारण मेरा मरना ही उत्तम है।'

दोनों मृगों की बातें सुनकर राजा बड़े असमंजस में पड़ गए। निपुत्री होने का दुःख और बहु सन्तान होने की चिन्ता दोनों ही मानों मूर्तिमान होकर उनके सामने उपस्थित हुए। सन्तति से इसलोक और परलोक में दुःख और अधोगति की भी प्राप्ति होती है और सुख एवं सद्गति की भी। अन्त में राजा ने यज्ञ करना छोड़कर तप द्वारा पुत्र को प्राप्त करना चाहा। उनके कठोर तप से प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने उन्हें एक परम प्रतापी पुत्र दिया जिसका नाम बलाश्व पड़ा। पुत्र के बड़े होने पर खनीनेत्र

उसे गद्दी पर बैठालकर तप करने चले गये। बलाश्व धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। उन्होंने अपने पराक्रम से अनेक नये राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। अनेक राजा उनके गुप्तशत्रु हो गये। शत्रुओं ने उन्हें अनेकबार परास्त करने की युक्तियाँ की, किन्तु हरबार वे अपने पराक्रम से विजय प्राप्त करते रहे। कई बार उनका राज्य उनके हाथों से निकल गया, किन्तु हरबार उन्होंने प्रयत्न कर उसे फिर से प्राप्त कर लिया। अन्त में एकबार शत्रुओं ने उनकी सारी सेना नष्टकर डाली, उनके खजाने को लूट लिया, उनके मंत्रियों को फोड़ लिया। राजा सेना, कोष और साधनों के बिना अकेले चिन्ता करने लगे। किन्तु उन्होंने उद्योग न छोड़ा। अपने कौशल से उन्होंने हाथ के इशारों पर एक प्रबल सेना खड़ी कर ली और उसके बल पर वे फिर शत्रुओं से भिड़ गये एवं अन्त में सबको परास्त कर भूमण्डल का राज्य उन्होंने प्राप्त कर लिया। कर-कौशल से उन्होंने सेना तैयार की थी इस कारण उनका नाम करन्धम पड़ गया।'

'महाराज करन्धम (बलाश्व) को वीरा रानी से अवीक्षित नामक बड़ा बली पुत्र प्राप्त हुआ। उस पुत्र को पापक्रूर ग्रह नहीं देख सकते थे इस कारण उसका नाम अवीक्षित रक्खा गया। अवीक्षित ने कण्व के पुत्र से उत्कृष्ट

अस्त्र-विद्या प्राप्त की। वे रूप में अश्विनीकुमारों के समान, बुद्धि में बृहस्पति, क्रान्ति में चन्द्रमा और तेज में सूर्य के, धैर्य में समुद्र के, सहिष्णुता में पृथ्वी के समान थे। और वीरता में तो अद्वितीय थे। समय-समय पर स्वयंवरों में जाकर उन्होंने हेमधर्मा की कन्या वरा, सुदेव की कन्या गौरी, बलि की पुत्री सुभद्रा, वीर की कन्या लीलावती, वीरभद्र की पुत्री निभा, भीम की कन्या मान्यवती, दम्भ की पुत्री कुमुद्वती को अनेक वीरों और राजा-सामन्तों को युद्ध में हरा-हराकर बलपूर्वक वरण किया। एकबार अवीक्षित ने वैदिशाधिपति राजा विशाल की पुत्री को स्वयंवर के अवसर पर बलपूर्वक हरण करना चाहा। स्वयंवर में उपस्थित अन्य राजाओं ने मिलकर उनपर आक्रमण किया। धर्म युद्ध में अवीक्षित ने सबको हरा दिया। तब उन लोगों ने अधर्म युद्ध का आश्रय लेकर धोखे से अवीक्षित को बाँध लिया। राजा विशाल ने उन्हें बन्दीग्रह में डाल दिया। जब यह समाचार उनके पिता राजा करन्धम ने सुना। रानी वीरा ने कहा कि क्षत्रिय का धर्म ही दूसरों से बलपूर्वक वस्तु ले लेना है; जिसमें शौर्य-वीर्य-कौशल-पराक्रम होगा वही तो वीरों का सामना करने का साहस कर सकेगा और उन्हें परास्त कर उनके सामने से किसी वस्तु को अपने अधिकार में ले सकेगा।

रानी वीरा के परामर्श से राजा करन्धम ने सेना लेकर राजा विशाल पर चढ़ाई कर दी। तीन दिन तक घोर युद्ध हुआ। अन्त में सब के परास्त हो जाने पर विशाल ने करन्धम की अधीनता स्वीकार कर ली और अवीक्षित को बन्धन से मुक्तकर अपनी पुत्री का विवाह उनसे करने का आयोजन किया। अवीक्षित ने कहा कि मेरा यश-पराक्रम तो खण्डित हो गया है, मैं अपने पौरुष से कुछ न कर सका, पिता के कारण मैं बन्दी-गृह से छूटा हूँ, अब मैं किसी स्त्री से कोई सम्बन्ध न रक्खूँगा और न किसी भोग को भोगूँगा ही। पुरुष वही है जो अपने पराक्रम से विजय प्राप्त करे, मैं पराक्रम-हीन होने के कारण शत्रुओं से पराजित हुआ, अब तो मैं स्त्रीवत हूँ, मैं विवाह या सुखोपभोग कैसे करूँ।

राजा विशाल, करन्धम, मंत्री, ऋषि-मुनि आदि ने अवीक्षित को बहुत समझाया, पर वह न माना। विवश होकर विशाल ने अपनी पुत्री से कहा कि तुम किसी दूसरे के साथ विवाह कर लो, पर राजकन्या ने भी हठ पकड़ली कि मैं तो अवीक्षित को पति मान चुकी हूँ, अब किसी दूसरे की ओर देखना भी मेरे लिए पाप है। यह कह, वह तप करने वन में चली गई। जब उपवास करते-करते तीन महीने बीत गये और उस के शरीर में केवल अस्थि-

चर्म शेष रह गये। तब स्वर्ग से देवताओं ने एक देवदूत को भेजा। देवदूत ने आकर राज-कन्या को समझाया कि तुम प्राण-त्याग न करो तुम्हारे गर्भ से ऐसा प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा जो चक्रवर्ती राजा होकर सातों खण्डों का एक छत्र राज्य करेगा और अपने यश तथा दान से संसार को भर देगा, समय आने पर अवीक्षित स्वयं तुम्हें ले जायँगे। तुम शोक-संताप छोड़ दो और अपने शरीर की रक्षा करो।

राजकुमारी ने प्राण-त्यागने का संकल्प छोड़ दिया। कुछ समय बाद नदी में स्नान करते समय एक वृद्ध नाग उसे घसीट कर नाग लोक में ले गया। सभी नाग-नागिनों ने राज-कन्या की बड़ी सेवा-स्तुति की, उसे दिव्य वस्त्रा-भूषणों से सजाया, उसकी पूजा-आरती की और उससे यह वर माँगा कि कभी नाग आप के प्रतापी पुत्र का अपराध करें तो आप उन्हें क्षमा करा दें। कुमारी की समझ में कोई बात न आई, किन्तु उसने नागों को क्षमा करा देने की प्रतिज्ञा कर ली। वृद्ध-नाग बहुत-से दिव्य पदार्थों के साथ उसे उसके स्थान पर पहुंचा आया।'

'इधर रानी वीराने अपने पुत्र अवीक्षित को राज भवन में उदास और विरक्त देख उसे बहुत समझाया कि पिता-पुत्र में कोई भेद नहीं है, तुम्हारे पिता ने ही सहायता पहुँचाई है, पर

उसके मन से पराजय की ठेस दूर न हो सकी। तब बुद्धिमती रानी वीरा ने किमिच्छक नामक कठिन व्रत करना प्रारंभ किया। उन्होंने अपने धर्मात्मा पति करन्धम के अक्षय कोष के आधे भाग को अपने पुत्र को देकर कहा कि तुम इस व्रत को सफलता पूर्वक निर्विघ्न समाप्त करने में मुझे सहायता दो; तुम से जो भी स्त्री-पुरुष जो कुछ भी आ कर माँगे उसे वही देकर संतुष्ट करो कोई भी व्यक्ति विमुख न जाने पाये, नहीं तो मेरा व्रत खण्डित हो जायगा। राजकुमार नें माता की बात मान ली। नित्य याचकों को मुँह-माँगी वस्तुएँ देने लगे। एक दिन उनके पिता रूप बदल कर राजद्वार पर आये और याचना करने लगे। राजकुमार नें कहा कि जो मांगोगें वही मिलेगा। राजकुमार को अच्छी तरह से वचन-बद्ध करने के बाद राजा ने कहा कि मैं तुम्हारे पुत्र को गोद में खिलाना चाहता हूँ। राजकुमार ने कहा कि मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मैं स्त्री-प्रसंग और भोग विलास न करूँगा, क्यों कि मेरा यश-पराक्रम खण्डित हो चुका है, इस कारण मैं पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकता। पर राजा न माने। अन्त में माता के किमिच्छक व्रत को खण्डित होते देख राजकुमार को कहना पड़ा कि मैं किसी प्रकार पुत्र उत्पन्न करने की चेष्टा करूँगा। राजा ने प्रकट होकर उन्हें गले से लगा लिया।'

'इसी बीच में उन्हें वन में मृग-मांस लाने के लिए जाना पड़ा। घोर वन में उन्हें एक स्त्री का विलाप सुन पड़ा। वे उसी ओर बढ़ गये। देखा, एक दानव एक सुन्दरी कन्या को घसीटता हुआ ले जा रहा है, और कन्या रो-रोकर कह रही है कि मेरे जीवन को धिक्कार है, मैं वीर अवीक्षित की पत्नी और महाराज करन्धम की पुत्र-वधू आज अनाथा की भांति राक्षस द्वारा घसीटी जारही हूँ, कोई दयाकर मेरे सतीत्व को बचा ले। कन्या के वचन सुनकर अवीक्षित को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरी स्त्री यहाँ कहाँ? यह राक्षसी-माया तो नहीं है? पर अन्त में उन्होंने उस की रक्षा का विचार कर लिया और दौड़कर उस राक्षस को रोका। राक्षस ने दाँत पीस कर कहा—'मैं देवगण को परास्त करने वाले दनु का पुत्र दृढ़केश हूँ। मैं इस सुन्दरी को अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ, जो विघ्न डालेगा उसे मैं जीवित न छोड़ूँगा।'

राजकुमार ने उसे धक्के देकर उस कन्या को उसके हाथों से मुक्तकर दिया। फिर दोनों में घोर संग्राम हुआ। अन्त में कुमार ने दानव को मार डाला। देवगण ने प्रसन्न होकर उनपर फूलों की वर्षा की। कन्या ने कहा कि मैं राजा विशाल की पुत्री हूँ, आपके लिए अब तक तप कर रही थी। अब आप देवताओं की इच्छा पूर्ति के लिए

मुझे स्वीकार कीजिये। सकामा स्त्री का त्याग करने से घोर पाप लगता है।

इसी समय वहाँ अनेक अप्सराओं एवं गंधर्व-किन्नरों के साथ एक दिव्य पुरुष ने आकर कुमार से कहा—'मैं गंधर्वों का राजा नय हूँ। यह राजकुमारी मेरी कन्या भामिनी है। बाल्यावस्था में इसने अगस्त्य ऋषि की हँसी उड़ाई थी। अगस्त्य जी ने इसे शाप दिया कि तू मनुष्य हो जा और कष्ट उठा। उसी शाप के कारण यह राजा विशाल के यहाँ प्रकट हुई है। मैं आप से इसका विवाह करना चाहता हूँ। राजकुमार ने स्वीकार कर लिया। तुम्बुरु मुनिने उसी स्थान पर अनेक अप्सरा-गंधर्वों के सामने उनका विधि पूर्वक विवाह कर दिया। राजकुमार अपनी पत्नी के साथ गंधर्व, नाग आदि लोकों में जा-जाकर खूब विहार करने लगे। कुछ समय बाद उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गंधर्वों ने खूब आनंद मनाया। तुम्बुरु मुनि ने बालक के जातिकर्म संस्कार किये और आशीर्वाद दिया कि तुम चक्रवर्ती, महापराक्रमी होकर दीर्घकाल तक प्रजा को सुख पहुँचाओ; इंद्र, वरुण आदि सदा तुम्हारा कल्याण करें; पूर्व की वायु (मरुत) धूलि-रहित होकर बहे, दक्षिण-वायु (मरुत) आरोग्य प्रदान करे, पश्चिम-वायु (मरुत) पराक्रम दे, उत्तर-वायु (मरुत) बल प्रदान करे।

देवगण ने आकाशवाणी द्वारा घोषणा की कि बालक के संबंध में मरुत शब्द अनेकबार प्रयुक्त हुआ है, इस कारण इसका नाम मरुत ही होगा, और यह चक्रवर्ती राज्य करेगा।

कुछ काल बाद अवीक्षित उस बालक को लेकर अपने पिता के पास गये और बोले कि इसे लेकर आप मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करें। महाराज करंधम ने आनंद मग्न हो मरुत को लेकर खूब आनंद-उत्सव मनाया। बड़े होने पर मरुत ने शुक्राचार्यजी से शस्त्रों और शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। कुछ काल बाद करंधम ने वन जाने की इच्छा कर अवीक्षित से राजगद्दी पर बैठने के लिए कहा। पर वे राजी न हुए। उन्हें अपनी पराजय और बंदी बनाये जाने की बात न भूली थी। जब सब बहुत समझाकर भी उन्हें राज़ी न कर सके तब उन्हें विवश होकर उनके पुत्र मरुत को सिंहासन पर बैठालना पड़ा।

करंधम ने घोर तपकर शरीर छोड़ दिया। उनकी रानी वीरा वन में रहकर तप करने लगीं। कुछ काल बाद अवीक्षित भी अपनी स्त्री के साथ वनमें जाकर तप करने लगे। इधर मरुत धर्मपूर्वक राज्य करते हुए प्रजा को सुख देने लगे। मरुत ने अपने पराक्रम से पृथ्वी के सभी राजाओं को जीतकर चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया। फिर अंगिरा

के पुत्र और बृहस्पति के भाई संवर्त को पुरोहित बनाकर उन्होंने इतने यज्ञ किये कि वे इंद्र से भी बढ़ गये। देवताओं से सेवित मुंजवान पर्वत के स्वर्ण के शिखर को ही वे उठा लाये और अपने यज्ञों में सभी छोटी-बड़ी सामग्री स्वर्ण की ही बनवाई। उन्होंने यज्ञ में इतना स्वर्ण दिया कि लोग उसे ढोकर भी अपने घरों को न ले जा सके।

कुछ काल बाद तपस्विनी रानी वीरा ने उन्हें संदेश भेजा कि तुम अपने कर्तव्य से च्युत हो रहे हो, यह बहुत ही दुःख की बात है। तुम उस कुल में उत्पन्न हुए हो जिसके राजाओं का आश्रय देवगण को भी लेना पड़ता था। जब तक अभिषेक नहीं हो जाता तभी तक राजपुत्र सुखोपभोग कर सकता है, राजगद्दी पर बैठने से कष्ट सहन कर सदा प्रजा के कल्याण के कार्यों में ही समय बिताना पड़ता है। यदि राजा अपने कर्तव्य में असावधान हो जाता है तो उसके राज्य में गड़बड़ी फैल जाती है और उसे राज्य से तो हाथ धोना ही पड़ता है, मरने पर उसे नरक में भी जाना पड़ता है। राजाओं का शरीर भोग के लिए नहीं होता, क्योंकि राज-धर्म और प्रजा-पालन में बहुत अधिक क्लेश सहना पड़ता है। इस समय यहाँ ऋषि-आश्रमों में सर्पों का उत्पात बहुत बढ़ गया है। एक दिन में सर्पों ने सात ऋषि कुमारों को काटकर प्राण-हीन

कर दिया। किन्तु तुम्हें इसका पता तक नहीं है। तुम कैसे राज्य करोगे? तुम्हारा कर्तव्य है कि तुरन्त यहाँ आकर सर्पों को दण्ड दो और ऋषियों की रक्षा करो। प्रमाद से हानि होगी।'

यह संदेश पाकर मरुत बहुत विचलित हुए। वे प्रजा की रक्षा तत्परता से करना चाहते थे। यह असावधानी बिना जाने हो गई। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि सर्पों को दण्ड देकर उचित व्यवस्था की जाय। उन्होंने ऋषि-आश्रम में पहुँचकर ऋषिकुमारों को देखा और सर्पों के नाश के लिए संवर्तक नामक अस्त्र का प्रयोग किया। पृथ्वी, पाताल, आकाश के सर्प और नाग भस्म होने लगे। तब नागों ने व्याकुल होकर मरुत की माता भामिनी की शरण ली। भामिनी ने अपने पति अवीक्षित को अपने नागलोक में जाने और नागों से रक्षा की प्रतिज्ञा की बात बतलाकर कहा कि आप जाकर मरुत्त को समझाकर सर्पों के नाश से विरत करें। अवीक्षित सर्पों की रक्षा की प्रतिज्ञा करके मरुत के पास गये। मरुत ने सर्पों के नाश के कार्य में लगे रह कर ही दूर से उन्हें नम्रता पूर्वक प्रणाम किया। अवीक्षित ने उनसे भामिनी की और अपनी प्रतिज्ञा की बात बतलाकर कहा कि मैं पिता के रूप में तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम सर्पों को अब और न अधिक सताओ। मरुत ने

नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि मैं अपने राज-धर्म का पालन कर रहा हूँ, प्रजा की रक्षा के कार्य में आप बाधा न डालें; सर्पों ने दुष्टता की है,उन्हें दण्ड मिलना ही चाहिए। अवीक्षित ने कहा कि नाग मेरी शरण में आये हैं, उनकी रक्षा होनी ही चाहिए, उनको नष्ट करने से तो मरे हुए मुनि-पुत्र जी नहीं सकते, मेरी आज्ञा मानकर तुम अपने अस्त्र को वापस ले लो।

मरुत–'पापियों और प्रजा-द्रोहियों को दण्ड देना ही राजा का सर्व प्रथम धर्म है। यदि इन्हें दण्ड देने से मुझे नरक में भी जाना पड़े तो मुझे स्वीकार है। यदि मैं प्रजा को पीड़ा पहुँचाने वालों को दण्ड न दूँ तो सारे राज्य में ही विशृंखला उत्पन्न हो जायगी। आप राज्य के कल्याण का विचार कर मझे न रोकें। जो दुष्टों को दण्ड देकर शासित करता है और सज्जनों को पुरस्कार देकर उत्सा-हित करता है वही पुण्य-लोकों का भागी होता है, जो इसके विपरीत करता है वह स्वयं अधर्मी है।'

अवीक्षित ने अनेक प्रकार से समझाया, पर मरुत्त न माने। अन्त में क्रोधकर अवीक्षित ने कहा–'केवल तू ही अस्त्र-शस्त्रों को जानता हो सो बात नहीं है, मैं भी उनके दिव्य प्रयोगों को जानता हूँ। यदि शरण में आये हुए निरीह प्राणियों की रक्षा के लिए मुझे पुत्र को और राजा

को भी मारना पड़े तो मैं उसके लिए भी तैयार हूं।'

यह कहकर उन्होंने कालास्त्र को मरुत पर छोड़ा। उस सर्व-संहारकारी अस्त्र से पृथ्वी काँप उठी। मरुत ने कहा—'मैंने तो प्रजा को पीड़ा पहुंचाने वाले दुष्टों के संहार के लिए ही अस्त्र छोड़ा है, पर आप व्यर्थ में मुझे मारने के लिए कालास्त्र को छोड़ रहे हैं। प्रजा-पालन में यदि मित्र, बान्धव, गुरु, पिता भी बाधा डाले तो उसका वध करना न्याय संगत है। आप पिता होकर भी दुष्टों की रक्षा करने और मुझे मारने पर तुल गये हैं, इस कारण मैं आप पर भी प्रहार करूँगा। अब मेरा कोई दोष नहीं है।'

पिता-पुत्र में घोर संग्राम छिड़ गया। दोनों के भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से पृथ्वी-आकाश भर गये। लोक-क्षय होते देख भार्गव आदि ऋषियों ने आकर बीच-बचाव किया। नागों-सर्पों ने आकर अपने विष को खींच कर मुनि-पुत्रों को जीवित कर दिया और प्रतिज्ञा की कि प्रजा को कष्ट न देंगे। ऋषि-मुनियों के समझाने से पिता—पुत्र शान्त हो गये। प्रजा-पालन में मरुत को इस प्रकार संलग्न देख सब बहुत प्रसन्न हुए। उनके राज्य में किसी को किसी प्रकार कष्ट न होने पाता था।

महराज मरुत ने पहले अपने शरीर के काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीत कर संसार भर को अपने अधीन कर

लिया था।

विदर्भ की कन्या सौभाग्यवती प्रभावती, सुवीर की कन्या सौवीरी, मगधराज की कन्या सुकेशी, मद्रराज की पुत्री केकभी, कैकय देशपति की कन्या सैरंध्री, सिन्धुपति की कन्या वपुष्मती, चेदि राज की कन्या सुशोभना से उन्होंने विवाह किया। उनके १८ वीर पुत्र हुए, जिन में नरिष्यन्त सब से बड़े थे।

—:०:—

अध्याय १३२-१३६

नरिष्यन्त के यज्ञ से ब्राह्मण अयाचक; दम, नर-मांस से तर्पण

क्रौष्टुकिजी के पूछने पर मार्कण्डेय जी बोले—'महाराजा मरुत दीर्घकाल तक चक्रवर्ती राज्य करने के बाद अपने पुत्र नरिष्यन्त को गद्दी पर बैठाल कर वन में गये और तप कर उन्होंने दिव्य लोकों को प्राप्त किया। राजा नरिष्यन्त ने अपने पिता, आजा आदि के दिव्य गुणों और उत्तम कृत्यों का विचार कर, सोचा कि कुछ ऐसा श्रेष्ठ कार्य करना चाहिए जिससे संसार में यश फैले और लोक-कल्याण हो। अन्त में उन्होंने निश्चय किया—'जो राजा प्रजा के दुःख-क्लेश को दूर नहीं करता उसे अवश्य

ही नरक में जाना पड़ता है, फिर धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करना तो राजा का कर्तव्य ही है, उसमें विशेषता क्या है। दरिद्रों का भरण-पोषण करना और विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों को कष्ट से उबारना राजा का धर्म ही है। मैं ऐसे यज्ञ करूँगा जैसे किसी दूसरे ने न किये हों।'

नरिष्यन्त ने यज्ञ कर ऐसी दक्षिणा दी जैसी किसी दूसरे ने न दी थी। राजा के दिये हुए धन, रत्न, अन्न, वस्त्र, पृथ्वी, पदार्थों से सभी ब्राह्मणों की ऐसी तृप्ति हो गई कि उन्होंने दान लेना, और यज्ञ कराना ही छोड़ दिया। जब राजा दूसरे यज्ञ के लिए ब्राह्मण खोजने लगे तो उन्हें कोई भी ऐसा न मिला जो यज्ञ कराने और दान लेने को राजी होता। हारकर राजाने घर-घर जाकर ब्राह्मणों को मुह माँगे पदार्थ देने चाहे, पर कोई भी किसी वस्तु को लेने के लिए तैयार न हुआ। सभी ने उत्तर दिया कि हमारे पास पहले ही यज्ञ का इतना शेप है कि हमारे पुत्र-पौत्र भी उसे समाप्त न कर सकेंगे। राजा को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनके राज्य में सभी धन-धान्य से परिपूर्ण हैं। तब उन्होंने बारबार प्रणाम आदि करके कुछ ब्राह्मणोंको यज्ञ कराने के लिए राजी किया। उस काल प्रत्येक स्थान और दिशामें अनेकानेक यज्ञ हुए, राज्य भरमें यज्ञ करने वाले देख पड़े, पर दान लेनेको कोई तैयार न होता था।'

'राजा नरिष्यन्त ने अपनी रानी इन्द्रसेना से दम नामक पुत्र उत्पन्न किया। दम नौ वर्ष तक अपनी माता के गर्भ में रहने के बाद उससे निकले। बड़े होने पर उन्होंने दानव राज वृषपर्वा से धनुर्विद्या; दैत्यराज दुन्दुभि से समस्त अस्त्र-विद्या; शक्ति से वेद-वेदांग; राजर्षि अर्ष्टिषेण से योग-विद्या प्राप्त की। सब शस्त्र-शास्त्र में पारंगत हो जाने पर वे दशार्ण देश के राजा चारुकर्मा की अत्यन्त सुन्दरी कन्या राज-कुमारी सुमना के स्वयंवर में गये। अनेक देशों के राजा और राजकुमार आये थे। दम के सामने सभी फीके पड़ गये। राजकन्या का मन भी दम के प्रति आकृष्ट होगया। मद्रदेश का राजकुमार महानाद और विदर्भ-राज संक्रन्दन का पुत्र वपुष्मान राजकन्या पर विशेष रूप से आसक्त थे। उन दोनों ने मिलकर निश्चय किया कि स्वयंवर में तो राजकन्या को पाना असंभव है, इस कारण उसे पहले ही उड़ा देना चाहिए। यह निश्चय कर वे दोनों तैयार हो गये। जैसे ही राजकन्या उन दोनों की ओर से होती हुई जयमाला लेकर आगे दम की ओर बढ़ी, वैसे ही दोनों ने उसे पकड़ लिया। स्वयंवर-मण्डप में खलबली पड़ गई। दम ने उठकर कहा कि स्वयंवर तो उत्कृष्ट धर्म-कृत्य है, इसमें भी यदि ऐसी अनीति होने लगेगी तब तो न्याय-पूर्वक रहना ही कठिन हो जायगा।

दशार्ण-राज चारुधर्मा ने सबको शान्त कर उपस्थित राजाओं से कहा कि ऐसा न्याय होना चाहिए जिसमें धर्म और मर्यादा की रक्षा हो। उस समय दो दल हो गये। एक दल वाले कहने लगे कि कन्या तो राजकुमार दम को चाहती थी, इस कारण वह उनकी पत्नी हो चुकी, गंधर्व-विवाह के अनुसार अब उस पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं हो सकता। दूसरे पक्षवाले कहते थे कि क्षत्रियों में तो राक्षसी-विवाह ही अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है, इस कारण इस समय जो बलपूर्वक कन्या का हरण कर रहे हैं उन्हें उससे विवाह करने का पूर्ण अधिकार है। दम के पक्ष वालों का कहना था कि जब पहलेही कन्याने अपने पितासे कह दिया था कि वह दमको पसन्द कर चुकी, तब फिर वह कन्या कैसे रह गई, राक्षसी-विवाह में तो ऐसी कन्या का हरण उसके पिता के पास से होता है जिसने किसी को पति न बनाया हो। जब कन्या दमको पति मान चुकी तब फिर उस कन्या का हरण न होना चाहिये। पर दूसरे पक्ष वालों की यही हठ थी कि जिसमें बल हो वही कन्या को प्राप्त कर ले, यही न्याय है, धर्मानुमोदित बात है, क्षत्रियोचित कार्य है।

दम इस बात को सहन न कर सके। वे युद्ध के लिए तैयार हो गये। युद्ध में दम की विजय हुई। विवाह के

बाद पत्नी को लेकर दम अपने पिता के पास गये। कुछ काल बाद नरिष्यन्त पुत्र को राज्य देकर वन में तप करने चले गये। दम धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। 13158

वन में नरिष्यन्त मौन होकर घोर तप में प्रवृत्त हुए। एकबार वपुष्मान शिकार खेलता हुआ उसी स्थान पर जा पहुँचा और नरिष्यन्त को पकड़कर यह कहते हुए मार डाला कि इसी के पुत्र ने मुझसे राजकुमारी सुमना को छीन लिया है, मैं अपने उसी शत्रु के पिता को मारता हूँ। ऋषियों ने उसे बहुत रोका, पर वह न माना। राजा के मरने पर उनकी रानी इन्द्रसेना उनके साथ सती होगई। सती होने के पहले उसने अपने पुत्र दम को संदेश भेजा कि यदि तुममें कुछ भी शौर्य शेष है तो अपने पिता का बदला लो। विदूरथ के पिता को एक यवन नें मारा था, तब विदूरथ नें समस्त यवन-देश को नष्ट कर डाला था। असुरराज जम्भ के पिता को एक सर्प ने काटा था, तो जम्भ ने सभी पाताल-वासी नागों को मारा था। पराशर के पिता शक्ति को राक्षस ने मारा था, इस कारण पराशर ने समस्त राक्षसों को अग्नि द्वारा भस्म कर डाला था। तुम्हारे पिता को मौन रहने पर भी धोखे से दुष्ट वपुष्मान ने निरीह अवस्था में मारा है, उनका बदला लिये बिना तुम्हें सद्गति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

माता का संदेश सुन कर दम के प्राण व्याकुल हो उठे। वपुष्मान को युद्ध में मार कर उन्हों ने उसके रक्त से अपने पिता का तर्पण किया और उसके मांस से पिण्ड दान देकर राक्षस कुल में उत्पन्न ब्राह्मणों को खिलाया। इसके बाद वे धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे।

अध्याय १३७

पुराण की समाप्ति, माहात्म्य, १८ पुराण

पक्षी बोले'—इतनी कथा सुना कर महर्षि मार्कण्डेयजी ने क्रौष्टुकिजी को आदर पूर्वक विदा कर दिया। उसी समय हमने श्री मार्कण्डेय जी से यह कथा सुनी थी। इस अनादि सिद्धिदायिनी कथा को सबसे पहले ब्रह्माजी ने मार्कण्डेयजी से कहा था। इस कथा के सुनने से सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। ब्रह्माजी के कथनानुसार पुराणों में मार्कण्डेय पुराण का स्थान सातवाँ है। पुराण इस प्रकार हैं:—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, नृसिंह, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्माण्ड पुराण। उत्तम ग्रंथों के विधि पूर्वक पाठ एवं श्रवण से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं।'

'आशीर्वाद देकर जैमिनिजी अपने आश्रम को गये।'

(श्री मार्कण्डेय पुराण समाप्त)